ISSN 2250-2769

इतिहास दिवाकर

पीयर रिव्यूड मूल्यांकित त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १४ अंक १ चैत्र मास कलियुगाब्द ५१२३ अप्रैल २०२१

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

पर्व विशेष

✍ नववर्ष प्रतिपदा — आचार्य विजय — ५

संवीक्षण

✍ ऋग्वेद एवं गद्दी जनजाति की लोकगाथाओं में सृष्टि रचना - एक तुलनात्मक अध्ययन — निकू राम — १४

✍ कश्मीर का रिसता घाव : सैयदों व कश्मीरियों का संघर्ष — डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री — १८

✍ भारत में रोहिल्ला शक्ति का विस्तार और क्षेत्रीय शक्तियों का संघर्ष — डॉ. नवीन.सी. गुप्ता — २७

✍ Women's Participation in National Movement : Role of Socio-religious reform movements — Dr. Ankush Bhardwaj — ३८

व्यक्ति विशेष

✍ वजीर रामसिंह पठानिया का साहसिक एवं संघर्षमय जीवन — राजेन्द्र सिंह सम्बयाल — ४८

गांव का इतिहास

✍ देवता महाराज डकरेई व पुजारली गांव का इतिहास — डॉ. ओम प्रकाश शर्मा — ५६

श्रद्धाजंलि

✍ वीरव्रती शेर सिंह — डॉ. चेतराम गर्ग — ७२

पुस्तक समीक्षा

✍ आधुनिक भारत के निर्माता : डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार — दामोदर गौतम — ७४

✍ पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का जीवन दर्शन — प्रो. पूरन चन्द टंडन — ७६

ध्येय पथ

✍ गतिविधियां — ऋषि भारद्वाज — ७८

✍ सम्पादक के नाम पत्र — ८३

इतिहास दिवाकर

मूल्यांकित त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

सम्पादक : डॉ. राकेश कुमार शर्मा 94181 07730 rakesh.sharma9131@gmail.com

सह सम्पादक : डॉ. विवेक शर्मा 98168 23805 dr.viveksharma.skt@gmail.com

मार्गदर्शक मण्डल

डॉ. शिवाजी सिंह	गोरखपुर, (उ.प्र.)	+91–96288–72796	jns.sbs@gmail.com
श्री विजय मोहन कुमार पुरी	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–98163–20307	vmkpuri@outlook.com
प्रो. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–94181–77778	kuldeepagnihotry@gmail.com
डॉ. ईश्वर शरण विश्वकर्मा	प्रयागराज, (उ.प्र.)	+91–99354–00244	isvishwarkarma@gmail.com
प्रो. कुमार रत्नम	नई दिल्ली	+91–88396–79817	kumarratnam65@gmail.com
डॉ. सुदर्शन गुप्ता	कठुआ, जम्मू	+91–79735–61624	vnclsg@gmail.com
डॉ. रमेश चन्द शर्मा	हमीरपुर (हि.प्र.)	+91–94184–80231	dr.rcsharma7@gmail.com
श्री चेतराम गर्ग	नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)	+91–94184–85415	chetramneri@gmail.com

विषय विशेषज्ञ एवं परीक्षण मण्डल

प्रो. सुगम आनन्द	आगरा (उ.प्र.)	+91–93191–05821	sugam@yahoo.co.in
डॉ. ओम प्रकाश शर्मा	शिमला (हि.प्र.)	+91–94184–80231	sharmaom70@gmail.com
डॉ. भाग चन्द चौहान	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–92191–41813	bcawake@gmail.com
डॉ. धर्म चन्द चौबे	अलवर, राजस्थान	+91–94611–94995	choubeydc.87@gmail.com
डॉ. नीत बिहारी लाल	रामपुर, (उ.प्र.)	+91–98376–56583	neetbehari@gmail.com
डॉ. कंवर चन्द्रदीप	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–95318–04179	kanwar.chanderdeep@gmail.com
डॉ. अंकुश भारद्वाज	शिमला (हि.प्र.)	+91–98760–35002	ankushbhardwaj333@gmail.com
डॉ. प्रियतोश शर्मा	चण्डीगढ़	+91–95015–36200	priyatosh.32@gmail.com

सम्पादन सहयोग

डॉ. ओम दत्त सरोच	ऊना, (हि.प्र.)	+91–94180–42431	omduttsaroch29@gmail.com
डॉ. शिव भारद्वाज	सोलन (हि.प्र.)	+91–94188–28866	shivmrkv29@gmail.com
डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय	ऊना (हि.प्र.)	+91–97639–77002	apkmpandey@gmail.com
डॉ. मनोज कुमार	हिसार, हरियाणा	+91–94160–85062	rangra.manoj@rediffmail.com
डॉ. जयप्रकाश सिंह	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–98826–01975	jpsh.pol@gmail.com

व्यवस्थापक

प्यार चन्द परमार

+91–94180–59166

टंकण एवं सज्जा

रवि ठाकुर

सम्पादकीय कार्यालय

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, गांव व डाकघर - नेरी, जिला - हमीरपुर,

पिन - १७७००१ (हि०प्र०) दूरभाष : ०६४१८४-८५४१५

E-mail : itihasdivakar@gmail.com **Website :** www.ssneri.com

मूल्य : प्रति अंक - ₹ ५०.००, आजीवन (१५ वर्ष) - ₹ २०००.००, संस्थागत - ₹ ५०००.००

सम्पादकीय

आज़ादी का अमृत महोत्सव

नव संवत्सर की अनन्त मंगलकामनाएं।

भारत आज़ादी के ७५वें वर्ष में पहुंच गया है। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने कलियुगाब्द ५१२२, विक्रमी संवत् २०७७, १२ मार्च, २०२१ को इस बात को कहते हुए शुभारम्भ किया– 'आज़ादी के अमृत महोत्सव का अर्थ स्वतन्त्रता की ऊर्जा का अमृत है। जिसमें स्वातन्त्र्य योद्धाओं की प्रेरणा, नए विचारों, संकल्पों तथा आत्मनिर्भरता का अमृत है।' उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम से उत्पन्न विचारों, उपलब्धियों, कार्यवाही और संकल्प से उत्पन्न ऊर्जा से वर्तमान में अपने सपनों और दायित्त्व के लिए प्रेरणा देने वाला बताया है।

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में समाज का हर वर्ग अमीर-गरीब, किसान-मजदूर, साधु-संयासी सभी सामूहिक रूप से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फैंकने के लिए आन्दोलित हुआ। उसका स्मरण करना और युवा पीढ़ी के समक्ष उन जन-आन्दोलनों, घटनाओं, महापुरुषों और संस्थाओं के कार्य का विस्तार से चर्चा खड़ी करना राष्ट्र को एकताबद्ध करने का सुअवसर है। इतिहास मात्र जानकारियों का पिटारा मात्र नहीं है, वह उज्जवल भविष्य का निर्माण का पथ प्रदर्शक है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा, 'कुछ लोग भारत की दुर्दशा के लिए इतिहास के प्रति अधिक लगाव को ही कोसते हैं। यह ठीक नहीं है। मेरी धारण इससे भिन्न है और सत्य इससे उल्टा है। जब तक हिन्दू जाति अपने अतीत को भूली हुई थी तब तक वह संज्ञाहीन अवस्था में पड़ी रही और अतीत की ओर उसकी दृष्टि जाते ही चारों तरफ पुनर्जीवन के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। सत्य यही है क्योंकि पूर्वजों के बलिदानों, संघर्षों को देश की युवा पीढ़ी के सामने समय-समय पर रखना निरन्तर राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना जागृत करता है। इसी श्रृंखला में राजेन्द्र सिंह सम्बयाल द्वारा लिखित 'वजीर रामसिंह पठानिया का साहसिक एवं संघर्षमय जीवन' ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध प्रतिकार पठ्नीय शोध पत्र है।

भारतीय नवसंवत्सर कलियुगाब्द ५१२३, विक्रमी २०७८ का शुभारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तदानुसार १३ अप्रैल, २०२१ से हो रहा है। विश्व के सभी देशों में नववर्ष मनाने की परम्परा में भारतीय परम्परा सबसे प्राचीनतम एवं वैज्ञानिक है। हमें यह स्मरण रहना चाहिए कि ''छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्'' जड़ को छिन्न-भिन्न करने पर न तो शाखाएं बचेगी और न ही पत्ते। भारतीय कालगणना हमारे जीवन का हिस्सा बने इसके लिए संस्थान निरन्तर प्रयासरत है।

शोध संस्थान नेरी में हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी के संयुक्त तत्त्वावधान में श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी के १०६वें जन्मदिवस पर राष्ट्रीय परिसंवाद 'स्वतन्त्रता संग्राम में हिमाचल प्रदेश का योगदान' का आयोजन किया गया। श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी के साथ कार्य करने वाले श्री राम प्रकाश शर्मा 'शेर सिंह' सदस्य अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना का परलोक गमन इतिहास जगत के लिए अपूर्णीय क्षति है। शोध संस्थान दिवंगत् आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है।

विनीत,

डॉ. राकेश कुमार शर्मा

राजा विक्रमादित्य

चित्रांकन : राजा विक्रमादित्य - डॉ. नन्द लाल ठाकुर
वजीर रामसिंह पठानिया - सुरेश चौधरी

इतिहास दिवाकर : ४

पर्व विशेष

नववर्ष प्रतिपदा

आचार्य विजय

शोध सारांश

नववर्ष अभिनन्दन जहां राष्ट्र के हर्षोल्लास, नवोत्साह और दृढ़ विश्वास युक्त वातावरण का निर्माण करता है, वहीं कई ऐतिहासिक पक्षों को जागृत करता है। भारतीय काल-विज्ञान एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पक्ष है। भारतीय मनीषियों ने ब्रह्माण्ड, खगोलीय पिण्डों और ग्रहों की गति-युति आदि विषयों का चिरकाल पर्यन्त सूक्ष्म अध्ययन कर भारतीय संस्कृति और ज्ञान परम्परा को वैज्ञानिक और सार्वभौमिक कालगणना नामक विषय प्रदान किया। दिन, पक्ष, मास, वर्ष, युग, महायुग, मन्वन्तर और कल्प आदि इस शोध पत्र के मुख्य विषय हैं।

संकेत शब्द : *काल, अहोरात्र, घटिका, मुहूर्त, नक्षत्र, चान्द्रमास, सौर मास, नाक्षत्र मास, सावन मास, चतुर्युग, कृत युग, संवत्सर, कल्प, मन्वन्तर।*

महान वेदज्ञ यास्काचार्य काल की व्युतपत्ति करते हुए लिखते हैं कि **कालः कालयतेर्गतिकर्मणः** अर्थात् काल शब्द गत्यर्थक कल् धातु से घञ् प्रत्य करने पर बनता है। इस व्युत्पत्ति से स्पष्ट है कि काल का सम्बन्ध गति से है। परमेश्वर सम्पूर्ण चराचर जगत् को गति प्रदान करता है। अतः उसका एक नाम काल शब्द से अभिहित है।[1]

लोकानामन्तकृत् कालः कालोऽन्य कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्चयते।। सूर्यसिद्धान्त/अधिकार १/श्लोक १०

अर्थात् काल दो प्रकार का होता है। एक काल प्राणियों (सृष्टि) का संहार करने वाला तथा दूसरा गणना करने वाला। कलनात्मक काल भी दो प्रकार का होता है जैसे –

१. स्थूल होने से मूर्त संज्ञक (व्यवहारिक)

२. सूक्ष्म होने से अमूर्त संज्ञक (अव्यवहारिक)।

सर्वप्रथम स्थूल रूप से कालगणना में व्यवहृत मूर्त संज्ञक काल के विषय में विचार-विमर्श किया जा रहा है तद्यथा –

दस दीर्घाक्षर उच्चारणकाल	– १ प्राण (१० विपल)
६ प्राण (१०x६=६० विपल)	– १ पल (१ विनाड़ी)
६० पल (विनाड़ी)	– १ घड़ी (१ नाड़ी)
६० घड़ी (नाड़ी)	– १ नाक्षत्र अहोरात्र (१ दिन रात)
अतः १ दिन रात	– ६० x६०x ६ प्राण = २१६०० प्राण
१ दिन रात	– २४ घंटे = २४x६०x ६० = ८६४०० सेकण्ड्स
१ प्राण	– ८६४००/२१६०० = ४ सेकण्ड्स

उपरोक्त गणना से सिद्ध होता है कि एक स्वस्थ मनुष्य को सुखासन में बैठकर श्वास लेने और छोड़ने

में ४ सेकण्ड्स लगते हैं। जितने समय में मनुष्य की आंखों की पलकें झपकती हैं उसे निमेष कहते हैं।

१८ निमेष — १ काष्ठा

३० काष्ठा — १ कला (६० विकला)

३० कला — १ घटिका

२ घटिका — १ मुहूर्त (६० कला)

३० मुहूर्त — १ दिन

१ नक्षत्र दिन — ३० x २ x ३० x ३० x १८ = ९७२००० निमेष

उपरोक्त गणना सूर्य सिद्धांत से ली गयी है किन्तु स्कन्द पुराण में इसकी संरचना कुछ भिन्न मिलती है।

स्कन्द पुराण के अनुसार

१५ निमेष — १ काष्ठा

३० काष्ठा — १ कला

३० कला — १ मुहूर्त

३० मुहूर्त — १ दिन रात

१ दिन रात — ३० x ३० x३० x १५ = ४०५०० निमेष

भारतीय ज्योतिष परम्परा में सूर्यसिद्धांत को ज्यादा प्रामाणिक मानते हैं क्योंकि वो विशुद्ध ज्योतिषीय ग्रन्थ है और उसकी गणना भी ज्योतिषी द्वारा ही की गई है।

१ दिन — २१६०० प्राण = ८६४०० सेकण्ड्स = ९७२००० निमेष

१ प्राण — ९७२०००/२१६०० = ४५ निमेष

१ सेकंड — ९७२०००/८६४०० = ११.२५ निमेष

मास गणना

भारतीय कालगणना में चार प्रकार के मासों का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे - सौर मास, चन्द्र मास, नाक्षत्र मास और सावन मास।[२]

सौरमास : सौरमास सूर्य की संक्रांति से सम्बन्धित है। सूर्य मंडल का केन्द्र जिस समय एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता है, उस समय दूसरी राशि की संक्रांति होती है। एक संक्रांति से दूसरी संक्राति के समय को सौर मास कहते हैं। १२ राशियों के अनुगुण १२ ही सौर मास होते हैं। सूर्य जब पृथ्वी के पास होता है (जनवरी के प्रारंभ में) तब उसकी कोणीय गति तीव्र होती है और जब पृथ्वी से दूर होता है (जुलाई के आरम्भ में) तब इसकी कोणीय गति मंद होती है। कोणीय गति तीव्र होने के कारण वह एक राशि शीघ्र पार कर लेता है और सौर मास छोटा होता है, इसके विपरीत कोणीय गति मंद होने के कारण सौर मास बड़ा होता है। सौर मास का औसत मान ३०.४४ औसत सौर दिन होता है। १२ सौर मासों का एक सौर वर्ष बनता है। एक सौर वर्ष में दो अयन होते हैं –

उत्तरायण — मकर राशि से मिथुन राशि तक (लगभग छः मास)

दक्षिणायन — कर्क राशि से धनु राशि तक (लगभग छः मास)[३]

चान्द्र मास : सामान्यतः तीस तिथियों का एक चान्द्र मास होता है। चान्द्र मास में दो पक्ष (शुक्ल और कृष्ण) होते हैं। शुक्ल पक्ष की पन्द्रहवीं तिथि पूर्णिमा और कृष्ण पक्ष की पन्द्रहवीं तिथि अमावस्या कहलाती है।[४] चान्द्र मास दो प्रकार का होता है– शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या को पूर्ण होने वाला 'जमांत' मास मुख्य चान्द्र मास है। कृष्ण प्रतिपदा से पूर्णिमा तक पूरा होने वाला गौण चान्द्र मास है। यह तिथि की ह्रास वृद्धि के अनुसार २९, २८, २७ एवं ३० दिनों का भी हो जाता है। चन्द्रमा आकाश में चक्कर लगाता हुआ जिस समय सूर्य के निकटतम बिन्दू पर होता है उस समय अमावस्या होती है। जब चन्द्रमा सूर्य के निकटतम बिन्दू से पूर्व की ओर गति करते हुए १२० कला पर पहुंचता है तब प्रतिपदा तिथि पूर्ण होती है। १२० से २४० कला का जब अंतर रहता है तब दूज रहती है। २४० से २६० तक जब चंद्रमा सूर्य से आगे रहता है तब तीज रहती है। इसी प्रकार जब अंतर १६८°-१८०° तक होता है तब पूर्णिमा होती है, १८०°-१९२° तक जब चंद्रमा आगे रहता है तब कृष्ण प्रतिपदा होती है। पूर्णिमा के बाद चंद्रमा सूर्यास्त से प्रतिदिन कोई २ घड़ी (४८ मिनट) पीछे निकलता है। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष या मृगशिरा, पौष, माघ और फाल्गुन ये बारह चान्द्र मास हैं।

सावन मास : उपरोक्त संक्रान्ति और तिथि आधारित सौर और चान्द्र मासों की भान्ति सावन मास भी होता है। दो सूर्योदय के मध्यकाल का एक सावन दिन होता है तथा तीस सावन दिनों का एक सावन मास बनता है।[५]

नाक्षत्र मास : आकाश में स्थित तारा समूह को नक्षत्र कहते हैं। साधारणतः ये नक्षत्र चन्द्रमा के पथ से जुड़े होते हैं। नक्षत्र हमारे आकाश मण्डल के मील के पत्थरों की भान्ति हैं। जिससे आकाश की व्यापकता का आभास होता है। जिस तरह सूर्य एक वर्ष में मेष राशि से लेकर मीन राशि तक भ्रमण करता है ठीक उसी तरह चन्द्रमा भी अश्विनी नक्षत्र से लेकर रेवती नक्षत्र तक विचरण करता है तथा यह विचरण काल नाक्षत्र मास कहलाता है। एक नाक्षत्र मास का मान लगभग २७ दिन का होता है। भ-चक्र (नक्षत्र मण्डल) का दैनिक भ्रमण एक नाक्षत्र दिन होता है।[६]

विशेष : एक सौर वर्ष में १२ सौर मास तथा ३६५.२५८५ मध्यम सावन दिन होते हैं परन्तु १२ चंद्रमास ३५४.३६७०४ मध्यम सावन दिन का होता है, इसलिए १२ चंद्रमासों का एक वर्ष सौर वर्ष से १०.८९१७० मध्यम सावन दिन छोटा होता है। इसलिए कोई तैंतीस महीने में ये अंतर एक चंद्रमास के समान हो जाता है। जिस सौर वर्ष में यह अंतर १ चंद्रमास के समान हो जाता है उस सौर वर्ष में १३ चंद्रमास होते हैं। उस मास को अधिमास, अधिकमास, मल मास या पुरुषोत्तम मास कहा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चार प्रकार के मासों से चार प्रकार के वर्ष निर्धारित होते हैं। किन्तु भारतीय कालगणना में समय नियमन हेतु वर्षगणना सौर वर्षों में, मास गणना चान्द्र मासों में तथा दिवस गणना सावन दिवसों में ही की जाती है।

दिव्य वर्ष : मानव प्राणी का एक सौर वर्ष देवताओं का एक दिव्य दिन होता है। ३६० दिव्य दिन का एक दिव्य वर्ष माना गया है। अतः ३६० सौर वर्षों का देवताओं का एक दिव्य वर्ष हुआ।[७]

महायुग (चतुर्युग) : कृतयुग (सतयुग), त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग के समुच्य को एक महायुग या चतुर्युग कहा जाता है। एक महायुग का मान बारह हजार दिव्य वर्ष हैं [८] –

१२००० दिव्य वर्ष – १ चतुर्युग = १२००० x ३६० = ४३२०००० सौर वर्ष

चतुर्युग के दसवें भाग का चार गुना सतयुग (४०%), तीन गुना (३०%) त्रेतायुग, दोगुना (२०%) द्वापर युग और एक गुना (१०%) कलियुग का मान होता है। चारों युगों का मान दिव्य वर्षों एवं सौर वर्षों में क्रमशः इस प्रकार वर्णित है –

महायुग के कुलमान १२००० दिव्य वर्ष का दसवां भाग = १२०० दिव्य वर्ष

सतयुग – १२००x४ = ४८०० दिव्य वर्ष (४८००x३६० = १७२८००० सौर वर्ष)

त्रेतायुग – १२००x३ = ३६०० दिव्य वर्ष (३६००x३६० = १२९६००० सौर वर्ष)

द्वापरयुग – १२००x२ = २४०० दिव्य वर्ष (२४००x३६० = ८६४००० सौर वर्ष)

कलियुग – १२००x१ = १२०० दिव्य वर्ष (१२००x३६० = ४३२००० सौर वर्ष)

महायुग (चतुर्युग) = १२००० दिव्य वर्ष (१२०००x३६० = ४३२०००० सौर वर्ष)

एक अहोरात्र में प्रातः और सायं दो संध्या होती हैं उसी प्रकार प्रत्येक युग के आदि में जो संध्या होती है उसे आदि संध्या और अंत में जो संध्या आती है उसे संध्यांश कहते हैं। प्रत्येक युग की दोनों संध्याएँ उस युग के छठे भाग के बराबर होती है। [९] जैसे –

सतयुग – ४८००x१/६ = ८०० दिव्य वर्ष (८००x३६० = २८८००० सौर वर्ष)

त्रेतायुग – ३६००x१/६ = ६०० दिव्य वर्ष (६००x३६० = २१६००० सौर वर्ष)

द्वापरयुग – २४००x१/६ = ४०० दिव्य वर्ष (४००x३६० = १४४००० सौर वर्ष)

कलियुग – १२००x1/6 = २०० दिव्य वर्ष (२००x३६० = ७२००० सौर वर्ष)

मन्वन्तर : ७१ महायुगों का एक मन्वंतर होता है, जिसके अंत में सतयुग के समान (4800 दिव्य वर्ष / ४८००x३६० = १७२८००० सौर वर्ष) संध्या होती है। इसी संध्या में जलप्लव होता है।[१०]

कल्प : संधि सहित १४ मन्वन्तरों का एक कल्प होता है, जिसके आदि में भी सतयुग के समान एक संध्या होती है, इसलिए एक कल्प में १४ मन्वन्तर और १५ संध्या (सतयुग के सामान) हुई।[११]

७१ महायुग (१२०००x७१ = ८५२००० दिव्य वर्ष) = १ मन्वन्तर

१४ मन्वन्तर (११९२८००० दिव्य वर्ष) + १५ संधि (७२००० दिव्य वर्ष)

= १ कल्प (१२००००००० दिव्य वर्ष)

१२०००००००x३६० = ४३२०००००००० सौर वर्ष

एक कल्प ब्रह्मा के १ दिन के बराबर है। इतने ही समय की ब्रह्मा की एक रात होती है। एक ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष है। ब्रह्मा के दिन का अन्त सृष्टि का नाशक होता है। ब्रह्मा दिन के अन्त में समस्त सृष्टि को समेटकर एक कल्प तक निद्रा में रहते है। अतः कल्पान्त में सर्वत्र प्रलय होता है।[१२] जितने में एक ब्रह्मा की आयु पूर्ण होती है, उतने में भगवान विष्णु का एक निमेष (पालक झपकने का

समय) होता है। विष्णु के आगे भगवान शिव का काल है जोकि अनंत है।

प्रसिद्ध ज्योतिषीय ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त की रचना के समय ब्रह्मा की आधी आयु अर्थात् ५० वर्ष बीत चुके थे और ५१वें वर्ष के पहले कल्प के संध्या सहित ६ मनु बीत चुके थे और सातवें मनु वैवस्वत के २७ महायुग बीत चुके थे तथा अट्ठाईसवें महायुग का भी सतयुग बीत चुका था। बीते हुए ६ मन्वन्तरों के नाम हैं – (१) स्वायम्भुव (२) स्वारोचिष (३) औत्तमी (४) तामस (५) रैवत (६) चाक्षुष। वर्तमान मन्वंतर का नाम वैवस्वत है। वर्तमान कल्प को श्वेत कल्प कहते हैं।[३] इसीलिए हमारे संकल्प में कहते हैं –

प्रवर्तमानस्याद्य ब्राह्मणों द्वितीय प्रहरार्धे श्री श्वेतवराहकल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे... बौद्धावतारे वर्तमानेस्मिन वर्तमान संवत्सरे अमुकनाम वत्सरे अमुकायने अमुक ऋतु अमुकमासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे संयुक्त चन्द्रे ... तिथौ...

उपरोक्त सूर्यसिद्धान्त के रचनाकाल के भुक्त समय को आधार मानकर अभी तक इस कल्प के भुक्त समय का मान इस प्रकार है –

गत् छः मन्वन्तरों के वर्ष = १८४०३२००००
मन्वन्तरों की छः संधियां. कल्प की एक संधि के वर्ष = १२०९६०००
सातवें मन्वन्तर के बीते २७ महायुगों के वर्ष = ११६६४००००
अट्ठाइसवें महायुग के बीते कृत त्रेता व द्वापर युग के वर्ष = ३८८८०००
अट्ठाइसवें वर्तमान कलियुग के भुक्त वर्ष = ५१२३
वर्तमान में चल रहे कल्प के आदि से अभी तक कुल बीते वर्ष (भुक्त वर्ष)
= १९७२९४९१२३ सौर वर्ष

मैटोनिक चक्र : मिटन ने ४३३ ई.पू. में देखा कि २३५ चंद्रमास और १९ सौर वर्ष अर्थात् १९x१२ = २२८ सौर मासों में समय लगभग समान होता है, इनमें लगभग १ घंटे का अंतर होता है।

१९ सौर वर्ष – १९ x ३६५.२५ = ६९३९.७५ दिवस
२३५ चन्द्र मास – २३५x२९.५३१ = ६९३९.७८५ दिवस

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक १९ वर्ष में २२८ सौर मास और लगभग २३५ चन्द्र मास होते हैं अर्थात् ७ चन्द्र मास अधिक होते हैं। चन्द्र और सौर वर्षों का अगर समन्वय नहीं करे तब लगभग ३२.५ सौर वर्षों में, ३३.५ चन्द्र वर्ष हो जाऐंगे। अगर केवल चन्द्र वर्ष से ही चलें तब अगर दीपावली नवम्बर में आती है तब १९ वर्षों में यह ७ मास पहले अर्थात् अप्रैल में आ जाएगी और इन धार्मिक त्यौहारों का ऋतुओं से कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा। इसलिये भारतीय पञ्चांग में इसका ख्याल रखा जाता है।

राशिचक्र : सूर्य जिस मार्ग से चलता हुआ आकाश में प्रतीत होता है उसे कान्तिवृत्त कहते हैं। अगर इस कान्तिवृत्त को बारह भागों में बांटा जाये तो हर एक भाग को राशि कहते हैं अतः ऐसा वृत्त जिस पर नौ ग्रह घूमते हुए प्रतीत होते हैं (ज्योतिष में सूर्य को भी ग्रह ही माना गया है) राशीचक्र कहलाता है। इसे हम ऐसे भी कह सकते हैं की पृथ्वी के पूरे गोल परिपथ को बारह भागों में विभाजित कर उन भागों में

पड़ने वाले आकाशीय पिंडों के प्रभाव के आधार पर पृथ्वी के मार्ग में बारह किमी के पत्थर काल्पनिक रूप से माने गए हैं।

संवत्

सनातन वैदिक पद्धति में कई संवत प्रचलित रहे हैं, लेकिन आज दो संवत अधिक प्रख्यात हैं, पहला विक्रम संवत और दूसरा शक संवत।

विक्रमी संवत् : गंधर्वसेन के पुत्र ''विषमशील'' ने ईसा से लगभग ५७ वर्ष पहले शकों को परास्त कर उज्जैन का राज्य अपने अधीन कर लिया। इसी कारण उनका नाम विक्रमादित्य नाम पड़ा। शकों को पराजित करने के उपलक्ष्य में विजय स्तंभ के रूप में विक्रमी संवत् का शुभारम्भ किया गया।[१४] आरंभ में इस संवत को कृत संवत के नाम से जाना गया। कालांतर में यह मालव संवत के रूप में भी लोकप्रिय हुआ। महाकवि कालिदास इन्हीं सम्राट विक्रमादित्य के नवरत्न थे। बारह महीने के एक वर्ष एवं सात दिन के सप्ताह का आगाज विक्रम संवत से ही आरंभ हुआ। विक्रम संवत में दिन, सप्ताह और मास की गणना सूर्य व चंद्रमा की गति पर निश्चित की गई। यह कालगणना अंग्रेजी कैलेंडर से बहुत आधुनिक और विकसित प्रतीत होती है। इसमें सूर्य, चंद्रमा के साथ अन्य ग्रहों को तो जोड़ा ही गया, साथ ही आकाश गंगा के तारों के समूहों को भी शामिल किया गया, जिन्हें नक्षत्र कहा जाता है। एक नक्षत्र चार तारा समूहों के मेल से निर्मित होता है, जिन्हें नक्षत्रों के चरण के रूप में जाना जाता है। कुल नक्षत्रों की संख्या सत्ताईस मानी गयी है, जिनमें अट्ठाईसवें नक्षत्र अभिजीत को शुमार नहीं किया गया। सवा दो नक्षत्रों के समूहों को एक राशि माना गया। इस प्रकार कुल बारह राशियां वजूद में आईं, जिन्हें बारह सौर महीनों में शामिल किया गया। पूर्णिमा पर चंद्रमा जिस नक्षत्र में गतिशील होता है, उसके अनुसार महीनों का विभाजन और नामकरण हुआ है।

शक् संवत् : शाके अथवा शक संवत भारत की बेहद प्रचलित काल निर्णय पद्धति है। शक संवत का आरंभ ईसा से लगभग अठहत्तर वर्ष पहले हुआ।[१५] लेकिन इसका अस्पष्ट स्वरूप ईसा के पांच सौ साल पहले से ही मिलने लगा था। वराहमिहिर ने इसे शक-काल और कहीं कहीं शक-भूपकाल कहा है। शुरुआती कालखंड में लगभग समस्त ज्योतिषीय गणना और ज्योतिषीय ग्रंथों में शक संवत ही प्रयुक्त होता था। शक संवत के बारे में धारणा ये है कि यह उज्जैन के सम्राट 'चेष्टन' के अथक प्रयास से आरंभ हुआ। इसके मूल में सम्राट कनिष्क की बड़ी भूमिका मानी जाती है। शक संवत को 'शालिवाहन' भी कहा जाता है। शक् संवत् के शालिवाहन नाम का उल्लेख तेरहवीं से चौदहवीं सदी के शिलालेखों में मिलता है।

संवत्सर

जैसे बारह माह होते हैं उसी तरह ६० संवत्सर होते हैं।[१६] संवत्सर अर्थात बारह महीने का कालविशेष। सूर्यसिद्धान्त अनुसार संवत्सर बृहस्पति ग्रह के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। ६० संवत्सरों में २०-२०-२० के तीन हिस्से हैं जिनको ब्रह्माविंशति (१-२०), विष्णुविंशति (२१-४०) और शिवविंशति (४१-६०) कहते हैं। बृहस्पति की गति के अनुसार प्रभव आदि साठ वर्षों में बारह युग होते हैं तथा प्रत्येक युग में पांच-पांच वत्सर होते हैं। बारह युगों के नाम हैं- प्रजापति, धाता, वृष, व्यय, खर,

दुर्मुख, प्लव, पराभव, रोधकृत, अनल, दुर्मति और क्षय। प्रत्येक युग के जो पांच वत्सर हैं, उनमें से प्रथम का नाम संवत्सर है। दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर और पांचवा युगवत्सर है। १२ वर्ष बृहस्पति वर्ष माना गया है। बृहस्पति के उदय और अस्त के क्रम से इस वर्ष की गणना की जाती है। इसमें ६० विभिन्न नामों के ३६१ दिन के वर्ष माने गए हैं। बृहस्पति के राशि बदलने से इसका आरंभ माना जाता है। ६० संवत्सर : संवत्सर को वर्ष कहते हैं, प्रत्येक वर्ष का अलग नाम होता है। कुल ६० वर्ष होते हैं तो एक चक्र पूरा हो जाता है। इनके नाम इस प्रकार हैं– प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृषप्रजा, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, अव्यय, सर्वजीत, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नंदन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्बी, विलम्बी, विकारी, शार्वरी, प्लव, शुभकृत, शोभकृत, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्ल्वंग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत, परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस, नल, पिंगल, काल, सिद्धार्थ, रौद्रि, दुर्मति, दुन्दुभी, रूधिरोद्गारी, रक्ताक्षी, क्रोधन और अक्षय।[१७]

विश्व भर में यूरोपीय सभ्यता के वर्चस्व के कारण ०१ जनवरी को नववर्ष मनाया जाता है। इस पाश्चात्य अन्धानुकरण के चलते भारत में भी कई लोग अंग्रेजी कलैण्डर के अनुसार नववर्ष ०१ जनवरी को ही मनाते हैं। सनातन वैदिक परम्परा अनुसार चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को नववर्ष का उत्सव मनाया जाता है। यह दिवस हिन्दू समाज के लिए अत्यंत विशिष्ट है, क्योंकि इस तिथि से ही नया पञ्चांग प्रारंभ होता है और वर्ष भर के पर्व, उत्सव और अनुष्ठानों के शुभ मुहूर्त निश्चित होते हैं। सनातन धर्म के अनुसार माना जाता है कि इसी दिन सृष्टि का आरंभ हुआ था।[१८] भारतवर्ष में ऋतु परिवर्तन के साथ ही हिंदू नववर्ष प्रारंभ होता है। चैत्र माह में शीतऋतु को विदा करते हुए और वसंत ऋतु के सुहावने परिवेश के साथ नववर्ष आता है। यह दिवस भारतीय इतिहास में अनेक कारणों से महत्वपूर्ण है। पुराण-ग्रन्थों के अनुसार चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को ही त्रिदेवों में से एक ब्रह्मदेव ने सृष्टि की रचना की थी, इसीलिए हिन्दू भारतीय नववर्ष का पहला दिन अत्यंत हर्षोल्लास से मनाते हैं। इस तिथि को कुछ ऐसे अन्य कार्य भी सम्पन्न हुए हैं जिनसे यह दिवस और भी विशेष हो गया। जैसे– श्री राम और युधिष्ठिर का राज्याभिषेक, मां दुर्गा की साधना के लिए चैत्र नवरात्रि का प्रथम दिवस, आर्यसमाज का स्थापना दिवस, संत झूलेलाल की जंयती और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन के संस्थापक डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार जी का जन्मदिन आदि। इन सभी विशेष कारणों से भी चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का दिन विशेष बन जाता है।

इस बार नवसंवत्सर १३ अप्रैल २०२१ से शुरु होगा। ग्रहों की स्थिति को देखते हुए इस बार करीब ९० वर्ष बाद एक बार फिर एक खास संयोग बन रहा है। वैदिक ग्रंथों में ६० संवत्सरों का उल्लेख किया गया है। निर्णय सिंधु के संवत्सर प्रकरण में यह उल्लेख किया गया है कि संवत्सर क्रमानुसार चलते हैं। ८९ वर्ष का 'प्रमादी' संवत्सर अपना पूरा वर्ष व्यतीत नहीं कर रहा। जिसके चलते इसे अपूर्ण संवत्सर के नाम से जाना जाएगा। ९० वर्ष में पड़ने वाला संवत्सर विलुप्त नाम का संवत्सर 'आनंद' का उच्चारण नहीं किया जाएगा। इस बार नव संवत्सर को लेकर हुए निर्णय के अनुसार वर्तमान संवत २०७७ 'प्रमादी'

नाम का संवत्सर फाल्गुन मास तक रहेगा। इसके बाद पड़ने वाला 'आनंद' नाम का विलुप्त संवत्सर पूर्ण वत्सरी अमावस्या तक रहेगा। आगामी संवत्सर संवत २०७८ जो 'राक्षस' नाम का होगा वह चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा तिथि से प्रारंभ होगा। यह संवत्सर ३१ गते चैत्र तदनुसार १३ अप्रैल २०२१ मंगलवार से प्रारंभ होगा। इस बार विचित्र योग बन रहा है। नवसंवत्सर राक्षस नाम से जाना जाएगा।

अंग्रेजी वर्ष २०२१ के मान से १३ अप्रैल को विक्रम संवत २०७८ से राक्षस नाम का संवत्सर प्रारंभ होगा। मंगलवार से प्रारंभ हो रही प्रतिपदा के कारण इस संवत का राजा क्रूर ग्रह मंगल होगा। मंगल दंगल भी कराता है और मंगल भी करता है। इस संवत की ग्रह परिषद में छः पद क्रूर ग्रहों के पास है और चार पद सौम्य ग्रहों को प्राप्त हुए हैं। महाक्रूर शनि के कोई पद नहीं है परंतु पूरे वर्ष वह मकर राशि में रहेंगे। विक्रम संवत वृषभ लग्न में प्रवेश करेगा और चैत्र नवरात्रि १३ अप्रैल, २०२१ का शुभारंभ रोहणी नक्षत्र में मंगलवार को शुरू होगा। इस बार अमावस्या और नव संवत्सर के दिन, सूर्य और चंद्रमा मीन राशि में ठीक एक ही अंश पर हैं अर्थात् मीन राशि में नया चंद्रमा उदय होगा। वृषभ राशि में मंगल और राहु दोनों ही विद्यामान हैं। राजा, मन्त्री और वर्षा का अधिकार मंगल ग्रह के पास है। मंगल को ग्रह राजा व मंत्री का पद मिला है तथा वित्त का गुरु ग्रह को मिला है। राजा मंगल है, मंगल को युद्ध का देवता कहा जाता है। लाल रंग के कारण यह उग्र ग्रह है। यह हिंसा, विनाश, शक्ति, सशस्त्र बलों, सेना, पुलिस, इंजीनियरिंग, अग्निशमन, शल्य चिकित्सा, कसाई, छिपकर हत्या करने वाला दुर्घटना, अपहरण, बलात्कार, राजैनतिक अस्थिरता का कारक ग्रह हैं। राक्षस संवत में प्राकृतिक प्रकोपों एवं अव्यवस्था के कारण फसलों को हानि तथा विभिन्न प्रकार की बीमारियों एवं महामारी से लोगो को कष्ट रहेगा। मँहगाई में वृद्धि ये परिणाम दिखाई देंगे? राक्षसो जैसा आचरण, स्वार्थी, भय का वातावरण और लोगों की राक्षस जैसी सोच बन जाएगी। वृषभ राशि मे मंगल और राहु दोनों ही विद्यामान हैं। इस साल आंधी-तूफान का जोर रहेगा। वायुयान दुर्घटनाएँ, अग्निकांड, भूंकम्प, प्राकृतिक आपदाओं, आतंकवादी घटनाओं, तस्करी, ठगी और लूटपाट की घटनाओं में वृद्धि होगी। समाज मे रोगों की बढ़ोतरी और अचानक से आंधी-तूफान, चक्रवात, होने से जनता बहुत ज्यादा दुःखी होगी। कृषिक्षेत्र में उत्पादन की कमी से महगाई बढ़ेगी। नववर्ष विक्रम संवत में ६ क्रूर ग्रहों के पास महत्वपूर्ण पदों की भूमिका है। राजा, मन्त्री और वर्षा का अधिकार मंगल ग्रह के पास है। युद्ध प्रिय, टकराव, प्रतिद्वंद्विता प्रवृत्तियां बढ़ेगी। जिससे भारत और पड़ोसी देशों में अशान्ति बढ़ेगी। जिसके कारण राजैनतिक, सामाजिक और सरहदी क्षेत्रों में तनाव दिखाई देगा। भारतवर्ष, नेपाल, पाकिस्तान, चीन, ईरान और ईराक आदि देशों में राजैनतिक हिंसा बढ़ने से तनाव का माहौल बनेगा। उपद्रव की घटनाओं की वृद्धि होगी।[१६]

निष्कर्ष

भारतीय कालगणना खगोल पिण्डों की गति के सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर प्रतिपल, प्रतिदिन होने वाले उसके परिवर्तनों, उसकी गति के आधार पर यानी ठोस वैज्ञानिक सच्चाईयों के आधार पर निर्धारित हुई है। जबकि आज विश्व में प्रचलित ईस्वी सन् की कालगणना में केवल एक ही बात वैज्ञानिक है वह उसका वर्ष पृथ्वी के सूर्य की परिक्रमा करने में लगने वाले समय पर आधारित है। बाकी उसमें माह तथा दिन का दैनिक खगोल गति से कोई सम्बंध नहीं है। जबकि भारतीय गणना का प्रतिक्षण, प्रतिदिन,

खगोलीय गति से सम्बंध है। सृष्टि की कालगणना के अनुसार भारत में प्रचलित सम्वत्सर केवल भारतवासियों का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण संसार व समस्त मानवीय सृष्टि का संवत्सर है। इसलिए यह सकल व्रह्माण्ड के लिए नव वर्ष के आगमन का सूचक है।

सन्दर्भ :

१. यास्काचार्य कृत निरूक्त २/२५
२. बृहत्संहिता, सांवत्सर सूत्राध्याय २, सूत्र ४
३. सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय १४, श्लोक ६
४. वही, श्लोक १४
५. वही, श्लोक १८-१६
६. वही, श्लोक १५
७. सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकारः १, श्लोक १४
८. श्रीमद्भागवत पुराण, तृतीय स्कन्ध, अध्याय ११, श्लोक १८
९. सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकारः १, श्लोक १६
१०. वही, श्लोक १८
११. वही, श्लोक १६
१२. वही, श्लोक २०
१३. वही, श्लोक २,३,२२,२३
१४. राजेश्वर व्यास, संवत् प्रवर्तक सम्राट विक्रमादित्य, पाण्डुलिपि प्रकाशन, कृष्णानगर दिल्ली, विक्रमी संवत् २०४५, पृ. १४७
१५. कल्हण कृत राजतरंगिणी, प्रथम तरंग, श्लोक ५२
१६. बृहत्संहिता, सांवत्सर सूत्राध्याय, सूत्र ५
१७. निर्णय सिन्धु, प्रथम परिच्छेद, संवत्सर निर्णय
१८. वही, तिथि निर्णय १.४.३
१९. बृहत्संहिता, ग्रहवर्ष फलाध्याय १९, श्लोक ७,८,९

पस्सल (चौंतड़ा)
जोगिन्द्रनगर
मण्डी (हि.प्र.)

संवीक्षण

ऋग्वेद एवं गद्दी जनजाति की लोकगाथाओं में सृष्टि-रचना

- एक तुलनात्मक अध्ययन

निकू राम

शोध सारांश

ज्ञानराशि वेद मानव समाज में ज्ञान के आदि स्रोत हैं। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा अनुभवसिद्ध एवं साक्षात्कृत दिव्य ज्ञान वेदमन्त्रों में निबद्ध हैं। मानवीय सद्गुणों के पोषक सर्वोच्च सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिपादन वेदों में हुआ है। इसी दिव्य वेद ज्ञान के गूढ़तम विषयों को लोकसामान्य की ग्रहण क्षमता के अनुकूल बनाने हेतु इनकी पुराणों, दर्शन शास्त्रों, स्मृति आदि धर्मशास्त्रों तथा विभिन्न शास्त्रीय ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक सरल व्याख्या हुई है। वेद के प्रकृत विभिन्न विषयों में से एक सृष्टि-रचना सम्बन्धी आख्यान लोक में प्रचलित है। हिमाचल प्रान्त की सुदूर भरमौर (ब्रह्मपुर) वास्तव्य गद्दी जनजाति की लोकगाथा जलबिम्बी में सृष्टि-रचना और सृष्टि से पूर्व की परिस्थितियों का वर्णन है, जिसका उपजीव्य ऋग्वेद का नासदीय सूक्त एवं हिरण्यगर्भ सूक्त तथा पुराणादि में वर्णित सृष्टि-रचना तत्त्व हैं।

संकेत शब्द : *ऐंचली, जलबिम्बी, नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, सृष्टि, पौण, पाणी, माया, ब्रह्म।*

सृष्टि शब्द मूलतः संस्कृत भाषा के सृज् विसर्गे, परस्मैपदी सकर्मक धातु से भाव अर्थ में क्तिन् प्रत्यय जोड़ने पर निष्पन्न होता है। प्रकृत व्युत्पत्ति के आधार पर सृष्टि शब्द का अर्थ है – उत्पन्न होना अर्थात् उत्पत्ति। वैदिक परम्परा में सृष्टि के कर्त्ता और कारण निश्चित हैं अर्थात् सृष्टि स्वयं उत्पन्न नहीं होती अपितु सृष्टि (उत्पन्न) की जाती है। अथर्ववेद की शौनकसंहिता के 'क्षमां भूमिं ब्राह्मणा वावृधानाम्' आदि वेदवाक्यों से स्पष्ट होता है कि सृष्टि का कर्त्ता ब्रह्मा है, उसके द्वारा पृथ्वी का विस्तार किया गया है।[१] उपनिषद् भी ब्रह्मा को ही सृष्टिकर्त्ता मानते हैं। मुण्डकोपनिषद् में लिखित 'ब्रह्मा देवानां प्रथमं संवभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्य गोप्ता' आदि आप्तवाक्य भी उस परमशक्ति परब्रह्म को सृष्टिकर्त्ता के रूप में वर्णित करते हैं।[२]

सृष्ट्युत्पत्ति परमब्रह्म की इच्छा से होती है। भारतीय कालगणना के अनुसार ब्रह्मा के एक कल्पात्मक रात्रि के समय महाप्रलय होती है और रात्रि के अन्त में सृष्ट्युत्पत्ति होती है। सृष्ट्युत्पत्ति का कारण और कर्त्ता केवलमात्र परमशक्ति ब्रह्म ही है। तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार उस परमेश्वर ब्रह्म ने इच्छा की कि मैं एक से अनेक हो जाऊं अर्थात् बहुत रूपों में हो जाऊं।[३] ऐतरेयोपनिषद् के अनुसार उस परब्रह्म ने इच्छा की कि मैं विविध लोकों की सृष्टि करूं।[४]

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद का नासदीय सूक्त, पुरुषसूक्त एवं हिरण्यगर्भ सूक्त, विशुद्धरूप से सृष्टि-रचना के ज्ञानकोश हैं। इस वेदज्ञान और वैदिक संस्कृति का प्रारम्भिक काल से ही इस भारतभू के प्रत्येक स्थान पर विशेष महत्त्व रहा है। सम्प्रति भारत भूमि के प्रत्येक स्थान की संस्कृति वैदिक संस्कृति से प्रभावित है। हिमाचल प्रदेश की सुविख्यात गद्दी संस्कृति में भी वैदिक संस्कृति का प्रभाव विशेष रूप से

देखा जा सकता है। गद्दी संस्कृति की सृष्टि-रचना सम्बन्धित शिव ऐंचली मानो ऋग्वेद के नासदीय सूक्त एवं हिरण्यगर्भ सूक्त का गद्दी भाषा में रूपान्तरित रूप हो। सृष्टि-रचना से जुड़ी इस ऐंचली को स्थानीय भाषा में जलबिम्बी भी कहा जाता है। महाप्रलय के घनघोर अन्धकार में सर्वत्र जलविम्बन की प्रतीति प्रकृत ऐंचली में होने के कारण इसका जलबिम्बी नामकरण हुआ है।

सृष्टि-रचना का रहस्य इतना गूढ़ विषय है जिसका अन्तिम निष्कर्ष निकालना असंभव है। ऋग्वेद के नासदीयसूक्त के मन्त्रद्रष्टा ऋषि प्रजापति परमेष्ठी सृष्टि-रचना विषय पर कहते है कि इस गूढ़ातिगूढ़ रहस्य को केवल परमाकाश में रहने वाले परमेश्वर ही जानते हैं और यह भी हो सकता है कि वे भी न जानते हों। यही बन्धन मुक्त 'नेति नेति, चरैवेति चरैवेति' आदर्श आधारित भारतीय ज्ञान परम्परा का श्रेष्ठतम तत्त्व हैं कि यहां संभावनाओं की बलि नहीं दी जाती। ऐसा है और ऐसा भी हो सकता है, यही संभावना भारतीय ज्ञान परम्परा और भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता तत्त्व को परिपुष्ट करती है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त और हिरण्यगर्भ सूक्त की ऋचाओं में वर्णित सृष्टि उत्पत्ति और उत्पत्ति से पूर्व की घटनाएं गद्दी संस्कृति की जलबिम्बी लोकगाथा में यथावत सन्निहित हैं, तद्यथा

नासदीय सूक्त

नासादासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत्।
किमावरीवरू कुहकस्य शर्मन्नम्भरू किमासीद् गहनंगभीरम्।। १०/१२६/१

उस समय अर्थात् सृष्टि रचना से पूर्व महाप्रलय काल में न सत् (भाव तत्त्व) था और न ही असत् (अभाव तत्त्व) था। उस समय रजः अर्थात् पृथ्वी लोक, स्वर्गलोक और पाताललोक आदि की सूक्ष्म इकाई परमाणु भी नहीं था। न ही आकाश और ब्रहमांड थे। किसका आश्रय कहाँ था? क्या गंभीरता से जानने योग्य अगाध जल उस समय था? अर्थात् कुछ भी भी नहीं था।[४]

जलबिम्बी

न वो थिऐ धरती तै न वो थिऐ गासा, न वो थिऐ मेरु कमलासा हां।

अर्थात् उस महाप्रलय काल में न धरती थी, न ही आकाश था, न ही मेरु आदि पर्वत थे और न ही कमलास अर्थात कमल रुपी आसन या आश्रय था। यहाँ स्थानीय भाषा में कमलासा का अर्थ भगवान् शिव के कैलास से भी जोड़ा जाता है।[५]

नासदीय सूक्त

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अहून आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर किं चनास।। १०/१२६/२

अर्थात् उस समय न मृत्यु थी और न अमृत था। सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्र के अभाव में रात और दिन भी नहीं थे। वायु से रहित उस अवस्था में केवल मात्र क्रिया शून्य परब्रह्म अपनी शक्ति माया के साथ विद्यमान था। उस माया सहित ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था और उस से परे भी कुछ नहीं था।[६]

जलबिम्बी

न वो थिऐ पौण तै न वो थिऐ पाणी, न वो थिऐ चन्द्र तै सूरज।
न वो थिऐ नौ लाख तारे, ताँ वो थिऐ गुरु वो न्यारे हां।।

उस समय न पौण अर्थात् प्राणवायु और न ही जल था। चन्द्र और सूर्य भी उस समय नहीं थे। आकाश में दिखाई देने वाले नक्षत्र भी प्रलयकाल में नहीं थे। उस समय केवल मात्र एक न्यारे गुरु अर्थात् परब्रह्म थे।[८]

नासदीय सूक्त

तम आसीत्तमसा गूल्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तापसस्तन्महिना जायतैकम् ।। १०/१२९/३

सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में घोर अन्धकार से ढका हुआ अन्धकार था अर्थात् सर्वत्र घोर अन्धकार व्याप्त था। उस समय सब ओर जल ही जल था और उसी में वह एक अविनाशी तुरीय चैतन्य परब्रह्म अपने तपोबल के प्रभाव से उत्पन्न हुआ।[९]

जलबिम्बी

जलबिम्बी जलबिम्बी चौं वो पासे घोर निहारा हां।
ताँ थिया गुरु वो नियारा, इक हुंकार लेया अवतारा।।

सर्वत्र जल ही जल व्याप्त था और चारों ओर घोर निहारा अर्थात् अन्धकार व्याप्त था। तब हुंकार अर्थात् अपने संकल्प के बल पर वह परब्रह्म उत्पन्न हुए।[१०]

हिरण्यगर्भ सूक्त

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।१०/१२१/१

सृष्टि के आदि में हिरण्यगर्भ ही सभी प्राणियों का प्रकट अधीश्वर था। वही हिरण्यगर्भ पृथ्वी और अन्तरिक्ष को धारण करने वाला अर्थात बनाने वाला है उस हिरण्यगर्भरुपी परब्रह्म की हम उपासना करें। हिरण्यगर्भ शब्द का अर्थ है सोने का अण्डा। यह सोने का अण्डा क्या है और उसका गर्भ क्या है? पूर्ण शुद्ध ज्ञान की शांतावस्था ही हिरण्य अर्थात् सोने का अण्डा है, उसके अंदर अभिमान करने वाला चैतन्य ज्ञान ही उसका गर्भ है। स्वर्ण आभा को पूर्ण शुद्ध ज्ञान का प्रतीक माना गया है जो शान्ति और आनन्द प्रदान करने वाला है।[११]

जलबिम्बी

हुगतिये सामी ए हुग्त कमाई, अंग वो मरोड़ी जिनी मलूणी बणाई।
मालूणी री खंडी वो कराई, दैणे केरी धरती बणाई बायीं केरा गासा हो।।

युक्तिकार स्वामी ने अपनी युक्ति से अपने अंगों को मसलकर उसके मैल से एक अंडाकार मलूणी (अण्डा) बनाई। तत्पश्चात उस अण्डे को दो भागों में विभक्त कर उसके दाएं भाग से पृथ्वी और बाएँ भाग से आकाश को बनाया।[१२]

तत्पश्चात् लोकगाथा में आगे की सृष्टि रचना का वर्णन है जो पुराण-दर्शनशास्त्रादि आधारित है। युक्तिकार उस परब्रह्म द्वारा आकाश और पृथ्वी की रचना की गई। पृथ्वी की रचना के बाद उसकी बायीं मिट्टी से दीपक बनाकर प्रज्ज्वलित किया। आकाश और पृथ्वी की रचना के उपरान्त उस परब्रह्म ने विचार किया कि इनका उपयोग करने वाला कोई नहीं है। परिणामस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर ने पुनः अपने अंगों को रगड़कर मैल की मूर्ति बनाकर उसको जीवादान दिया। परब्रह्म के मन की रचना होने के कारण

वह मनसा कहलाई। जिससे क्रमशः ब्रह्मा विष्णु और महेश उत्पन्न हुए। ब्रह्मा और विष्णु के अंगीकार न करने पर अग्रिम सृष्टि रचना का दायित्त्व महेश अर्थात् भगवान शंकर को सौंपा गया। यह ऐंचली भगवान शिव को समर्पित होने के कारण उन्हें अग्रिम सृष्टि-रचना कर्त्ता के रूप में प्रदर्शित करती है अर्थात् मानव, पशु, पक्षी, जल, थल, वनस्पति आदि युक्त इस चराचर जगत् के सृष्टिकर्त्ता भगवान शिव हैं।

निष्कर्ष

परिणामस्वरूप वेद एवं वेदपरम्परा के सम्वाहक अन्य शास्त्र ग्रन्थों में सृष्टि रचना का जिस स्वरूप में वर्णन किया गया है उसी प्रकार हिमाचल प्रान्त की गद्दी जनजाति की लोकपरम्परा में प्रचलित सृष्टि रचना सम्बन्धी ऐंचली जलबिम्बी में आंचलिक विशेषताओं के समावेश के साथ-साथ वैदिक ज्ञान के मूलतत्त्व को यथावत् रूप में सुरक्षित रखते हुए प्रकृत विषय वर्णित किया गया है। जलबिम्बी लोकगाथा के प्रारम्भिक तीन पद्य शुद्धतया ऋग्वेद के सृष्टि रचना तत्त्वों को अपने में समाहित किए हुए हैं। उसके बाद के पद्य पुराण एवं दर्शनशास्त्रादि विभिन्न शास्त्रग्रन्थ आधारित सृष्टि रचना तत्त्वों का समवाय रूप है।

संदर्भ :

१. अर्थववेद शौनकसंहिता -१/४/५२
२. मुण्डकोपनिषद् - १।१।१
३. सोऽकामयत बहु रचां प्रणायेय, तैत्तिरीयोपनिषद्- २।६।१
४. स ऐक्षत लोकान्नु सृजै, ऐतरेयोपनिषद् - १।१
५. ऋग्वेद, नासदीयसूक्त - १०/१२९/१
६. जलबिम्बी लोकगाथा, प्रथम पद्य।
७. ऋग्वेद, नासदीयसूक्त - १०/१२९/२
८. जलबिम्बी लोकगाथा, द्वितीय पद्य।
९. ऋग्वेद, नासदीयसूक्त - १०/१२९/३
१०. जलबिम्बी लोकगाथा, तृतीय पद्य।
११. ऋग्वेद, हिरण्यगर्भसूक्त - १०/१२१/१
१२. जलबिम्बी लोकगाथा, चतुर्थ पद्य।

जिला भाषा अधिकारी
भाषा एवं संस्कृति विभाग
जिला हमीरपुर (हि.प्र.)

कश्मीर का रिसता घाव : सैयदों व कश्मीरियों का संघर्ष

डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

शोध सारांश

कश्मीरी साहित्य विशेषकर कश्मीरी लोक साहित्य में अरब के सैयदों और मध्य एशिया के तुर्क-मंगोलों द्वारा कश्मीर पर किए गए सांस्कृतिक आक्रमण की वेदना सर्वत्र देखी जा सकती है। वैसे तो भारत वर्ष पर अरब व मध्य एशिया के आक्रमणों से उत्पन्न स्थितियों का विश्लेषण सभी भारतीय भाषाओं में मिलता है लेकिन कश्मीर घाटी की वेदना ज्यादा गहरी है क्योंकि वहाँ सांस्कृतिक आक्रमण ज्यादा गहरा व प्रभावी रहा और किसी न किसी रूप में आज भी जारी है। इतना ही नहीं कालान्तर में घाटी का सत्ता पक्ष भी अरब के सैयदों और मध्य एशिया के तुर्क-मंगोलों के साथ मिल गया लगता था। कश्मीर घाटी में आज भी जिस सैयद की सबसे ज्यादा चर्चा होती है वह सैयद अली हमदानी था। उनकी चर्चा नकारात्मक व सकारात्मक दोनों प्रकार से होती है। ऐसा माना जाता है कि कश्मीर घाटी में इस्लाम का नया पंथ प्रचलित करने में उसका सबसे ज्यादा हाथ था।

संकेत शब्द : *कश्मीरी लोक साहित्य, सांस्कृतिक आक्रमण, बौद्ध संस्कृति, मुगल,खलीफा।*

सैयद अली हमदानी का कश्मीर में आगमन तैमूरलंग के कारण हुआ। यही कारण है कि कश्मीरियों के दर्द को समझने के लिए तैमूर को समझना जरुरी है। आज का जो तजाकिस्तान है, तैमूरलंग वहाँ का रहने वाला था। तैमूर किसी दुर्घटना में लँगड़ा हो गया था, इसलिए उसे तैमूरलंग यानि लँगड़ा तैमूर कहा जाने लगा। भारत में सैयद दो लहरों में आए। अरब हमलावरों के साथ और कालान्तर में तैमूरलंग से जान बचा कर भागते हुए। विलियम क्रुक लिखते हैं कि "भारत में अधिसंख्य सैयद ग्यारहवीं शताब्दी के शुरुआती दौर में मुस्लिम हमलावरों के साथ आए थे क्योंकि वे ज्यादातर मुल्ला मौलवी थे इसलिए उन हमलावर शासकों ने उन्हें कर मुफ्त जागीरें प्रदान कीं और उनके उत्तराधिकारी आज तक उन जागीरों को भोग रहे हैं। मुगल काल (१६वीं से १८वीं शताब्दी) में इन सैयदों के पास ही मजहबी व सिविल पद थे।"[१] पहली लहर में आने वाले इन सैयदों का जिक्र मौलाना अबुल कलाम आजाद ने भी किया है। लेकिन सैयदों और कश्मीरियों के बीच के संघर्षों पर चर्चा करने से पूर्व यह जान लेना भी श्रेयस्कर होगा कि आखरी ये सैयद कौन हैं और इनकी जड़ कहाँ है? इस्लाम मत के संस्थापक हजरत मोहम्मद के दामाद अली के खानदान से ताल्लुक रखने वाले लोगों को अरब भूमि में सम्मान के कारण सैयद कह कर सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार यह एक सम्मान सूचक सम्बोधन है। अली के खानदान से ताल्लुक रखने वाले इन सैयदों का अरबों की सामाजिक व्यवस्था में सबसे ऊँचा रुतबा रहता है। लेकिन जब अरबों ने मध्य एशिया को जीत लिया और वहाँ रहने वाले मंगोलों और तुर्कों को भी इस्लाम में मतान्तरित कर लिया तब जाहिर था कि इस मतान्तरित समाज में भी सैयदों का रुतबा बरकरार रहता और रहा भी।

बिहाकी और हमदानी सैयदों के कश्मीर में आने से भी सात दशक पहले एक और सैयद हजरत

शरफुद्दीन अब्दुल रहमान जो कालान्तर में हजरत बुलबुल शाह के नाम से जाना गया, सहदेव (१३०१-१३२०) के शासन काल में ही कश्मीर घाटी में आ गया था। लोककथा में यह भी प्रचलित है कि बुलबुल कलन्दर के कहने पर उस समय का शासक रिंचन मुसलमान हो गया था। परन्तु इसकी सत्यता पर अभी भी बहस चलती रहती है और इसके पुख्ता प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। कुल मिलाकर सैयद अली हमदानी के कश्मीर में आने से पहले घाटी में इस्लाम अपने लिए कोई खास स्थान नहीं बना पाया था। शासन द्वारा इक्का दुक्का यहाँ वहाँ एक आध मस्जिद बना देने और कुछ लंगर खाने खोल देने के सिवा इस्लाम के लिए कुछ नहीं किया। बलपूर्वक या स्वेच्छा से मतान्तरण का कोई इक्का दुक्का केस ही हुआ होगा। मंदिर गिराने या मूर्तियाँ तोड़ने को भी किसी ने उत्साहित नहीं किया।[२] चौदहवीं शताब्दी के कश्मीर में बुलबुल शाह व उसके प्रभाव का कोई पुख्ता प्रमाण नहीं मिलता। उस समय कोई इक्का दुक्का हिन्दु ही बुलबुल कलन्दर के प्रभाव से मुसलमान हुआ होगा। इस बात का कोई प्रमाण भी नहीं मिलता कि बुलबुल शाह के प्रभाव से हजारों कश्मीरी हिन्दु मुसलमान हो गए हों। १३७० के आसपास सैयद अली हमदानी के आने से पहले कश्मीर की स्थिति बताते हुए बहारिस्ताने शाही का लेखक लिखता है, उन दिनों कश्मीर में बहुसंख्यक लोग काफिर और Polytheist थे। इस प्रदेश के लोग काफिरों जैसे कपड़े ही पहनते थे।[३]

भारत में सैयदों की दूसरी लहर मध्य एशिया में तैमूरलंग का कब्जा होने के बाद आई। तैमूर (१३३६-१४०५) ने १३७० में मध्य एशिया में तैमूर वंश के शासन की स्थापना की। तैमूरलंग ने बल्ख, खुरासान व हेरात को जीतकर ईरान पर हमला किया। वहाँ उसके निशाने पर सैयद आ गए। अरबों ने कभी मध्य एशिया को जीता था लेकिन अब तो तुर्कों ने ही नए-नए इलाकों में अपनी विजय पताका फहरानी शुरु कर दी थी। इतना ही नहीं उन्होंने अपनी परम्परागत बौद्ध संस्कृति का त्याग कर अरबों के मजहब को भी स्वीकार कर लिया था। अब बाजी तुर्कों के हाथ में थी। इसलिए तैमूरलंग ने सैयदों के साथ अच्छे व्यवहार की एक शर्त रखी कि वे यह स्वीकार करें कि तैमूरलंग या तुर्कों को इस्लामी जगत का सम्राट बनने का अधिकार है। अब से तुर्क इस्लाम के खलीफा होंगे। लेकिन सैयद ऐसा कैसे स्वीकार कर सकते थे? वे तो अपने आप को हजरत अली के खानदान से जुड़ा होने के कारण इस्लाम का मजहबी नेता यानि ख़लीफा मानते थे। इस्लामी जगत के नेतृत्व का पैदायशी अधिकार वे अपना ही समझते थे। सैयदों ने मुसलमानों पर शासन करने के तैमूरलंग के अधिकार को मानने से इन्कार कर दिया।[४] सैयदों में अहंकार और श्रेष्ठता का भाव तो था ही। आखरी वे सीधे हजरत अली के समुदाय से ताल्लुक रखते थे। मध्य एशिया के किसी कबीले के आदमी को चाहे उसके कबीले ने इस्लाम मत को ग्रहण ही क्यों न कर लिया हो, मुसलमानों और वह भी सैयदों पर राज करने का अधिकार कैसे हो सकता है? तैमूरलंग तुर्क-मंगोल प्रजाति से ताल्लुक रखता था। उसका जो परिणाम होना था, वही हुआ। तैमूर ने सैयदों को दिन में तारे दिखा दिए।

इन सैयदों के भाग कर कश्मीर आने की एक और कथा कश्मीरियों में प्रचलित है, जिसे वे आज भी कभी उनको चिढ़ाने के लिए और कभी तरस खाने के लिए सुनाते रहते हैं। सैयद अली हमदानी के आने की इस कथा का उल्लेख सी.ई.टिंडेल.बिस्काए ने किया है। वे १८९० में कश्मीर आए थे। इस कथा के अनुसार, "तैमूरलंग ने हमदान को जीत लिया था। वह रात्रि को घूम कर प्रजा का हालचाल जाना

करता था। एक दिन उसने एक घर के अन्दर से बच्चों के रोने की आवाज सुनी तो वह उस मकान के आगे ठिठक गया, बच्चे भूख के मारे रो रहे थे। उनकी माँ ने अपने पति से कहा कि कहीं जाकर भीख ही माँग लो ताकि बच्चों का पेट भरा जा सके। लेकिन पति अपमान के मारे भीख माँगने के लिए तैयार नहीं था। तैमूरलंग ने तरस खा कर उनके घर के अन्दर सोने के सिक्के फेंक दिए। सुबह जब पति-पत्नी ने सोने के सिक्के देखे तो उनका संसार बदल गया। घर में धन धान्य आ गया। पड़ोसी सैयदों को हैरानी हुई कि कल तक भूखा मर रहा परिवार आज खाता-पीता कैसे हो गया? उन्होंने सोचा इन्होंने जरुर हमारे घर में चोरी की होगी। इसलिए उन्होंने इस गरीब आदमी के खिलाफ चोरी की शिकायत दायर कर दी। अब सैयद ठहरे हजरत अली के वंशज। इसलिए उनका जीतना तो पक्का ही था, ऐसा उनको यकीन था। तैमूरलंग को इस मुकद्दमे का पता चला। उसने दोनों पक्षों को बुलाया। उस गरीब आदमी ने अपनी सारी कथा सुना दी। तैमूरलंग स्वयं भी वह कथा जानता ही था। फिर उसने सैयदों से पूछा। सैयदों ने सौगन्ध खाकर कहा कि पैसा उनका चुराया गया है। तैमूरलंग सैयदों की यह करतूत देख कर आग बबूला हो गया। उसने सात धातुओं की मिश्रित धातु से एक घोड़ा बनाया और उसे आग में डाल कर लाल सुर्ख कर दिया। फिर उसने उन्हें हुकुम दिया कि इस घोड़े पर बारी बारी सवार हो जाओ। उसने कहा कि इस्लाम में माना जाता है कि आग सैयद को जला नहीं सकती। यदि तुम सच्चे हुए तो आग तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी। लेकिन यदि तुम झूठे हुए तो तुम सजा के पात्र हो। जिन सैयदों को तैमूरलंग का हुकुम मान कर आग पर सवार होना पडा वे आग से जल गए। जिन्होंने राजा का हुकुम मानने से इन्कार कर दिया वे तैमूर के सैनिकों की तलवार के शिकार हो गए। इस हड़बड़ी में एक सैयद किसी तरह प्राण बचा कर वहाँ से भाग निकला और बचता बचाता कश्मीर पहुँच गया। यही सैयद अली हमदानी था।''[४] तैमूरलंग के सम्बंध में रात्रि को घूम कर प्रजा का हाल जानने की यह कहानी सत्य प्रतीत नहीं होती क्योंकि उस से विजित प्रदेश में लोगों से मानवीय व्यवहार की आशा करना संभव नहीं है। तैमूरलंग का जीवन इसका साक्षी है। तब प्रश्न पैदा होता है कि कश्मीरियों ने यह कथा सैकड़ों साल पहले क्यों प्रचलित की? इसका सीधा उत्तर है, जब तैमूर के सताए सैयद भाग कर कश्मीर आए होंगे तो कश्मीरियों ने उनका स्वागत नहीं किया होगा क्योंकि उन्हें पहले ही बुलबुल शाह, शाहमीर, रिंचन और लंकेर चक का स्वागत करने का फल मिल चुका था। इसी के कारण कश्मीर घाटी में शाहमीर वंश की स्थापना हो गई थी और लोहारा वंश का शासन समाप्त हो गया था। शाहमीर वंश के शासन में ही कश्मीर में सर्वाधिक मतान्तरण हुआ। लेकिन इन सैयदों ने कश्मीर में आकर शाहमीर वंश के शासकों से साँठगाँठ शुरु कर दी और उन्हीं के बलबूते कश्मीरियों को सताना शुरु कर दिया। कश्मीरियों की व्यंग्य कला और प्रतीकों के माध्यम से चोट करने की क्षमता तो सर्वविदित है ही। इसी के चलते उन्होंने सैयदों को उनकी असलियत और औकात बताने के लिए ये कहानियाँ प्रचलित कीं जो आज तक भी सुनाई जाती हैं।

तैमूरलंग से मार खाए बिहाकी और हमदानी सैयद भारत की ओर भागे। इरान से भाग कर सैयद महमूद बिहाकी अपने चेलों के साथ कश्मीर में आ गया था। ये सैयद स्वयं को किसी न किसी सूफी सिलसिले का बताते थे। ऐसी ही एक और खेप १३७२ में ही सैयद अली हमदानी (१३१४-१३८४), जिसका ऊपर बार-बार जिक्र किया गया है, के नेतृत्व में कश्मीर घाटी में पहुँच गई। यह भी कहा जाता है कि सैयद

अली हमदानी १३८१ में घाटी में आया था कुछ लोग यह घटना १३७१ की बताते हैं।[४] कहा जाता है कि इस खेप में लगभग सात सौ सैयद कलन्दर थे। सैयद अली हमदानी जिसे शाह-ए-हमदान भी कहा जाता है, सैयद शहाबुद्दीन का बेटा और मीर सैयद मोहम्मद अल हसानी हमदान का पौत्र था। सैयद अली हमदानी ने भारत आने से पहले अपने दो चचेरे या ममेरे भाई सैयद ताज्जुद्दीन और सैयद हुसैन को मजहबी हालात का जायजा लेने के लिए कश्मीर भेजा।[५] जाहिर है दोनों भाईयों ने वापिस जाकर रपट दी होगी कि वर्तमान में कश्मीर का राजा भी अपने परम्परागत पंथ को त्याग कर इस्लाम पंथ में दीक्षित हो चुका है। कश्मीरी लोग अतिथि प्रिय हैं। उन्होंने रिंचन, शाहमीर व लंकेर चक सभी को शरण ही नहीं पद भी दिए थे। पचास साल पहले कश्मीर घाटी में आए एक दूसरे सैयद बुलबुल शाह कलन्दर को भी शरण दी। तैमूर के भय से भाग रहे सैयदों को इससे अच्छी पनाहगाह और कहाँ मिल सकती थी? सैयद अली हमदानी तुरन्त ही अपने सात सौ मुरीदों और परिवार को लेकर कश्मीर की घाटियों की ओर चला आया। यह भी कहा जाता है कि सैयद अली हमदानी का वंश दो शताब्दियों से हमदान पर राज कर रहा था। परन्तु इसका कोई पुख्ता प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। शायद परवर्ती इतिहासकारों ने सैयद अली को प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए शाह-ए-हमदान कहना शुरु कर दिया हो। यदि सैयद अली का खानदान राजवंश का भी था तो भी वक्त बदलते देर नहीं लगी। अब वह वक्त का मारा फिर रहा था। इसमें कोई शक नहीं कि सैयद अली हमदानी इस्लाम की किताबों का जानकार था। उसने कई किताबें लिखीं, "जिनमें से जखीरतुल मुलूक भी है जो उनके राजनीतिक विचारों पर आधारित है।[६] हमदानी का मानना था कि जो राजा, "शरीयत की सीमाओं का उल्लंघन करता है वह वास्तव में अल्लाह तथा पैगम्बर का शत्रु है।"[६] लेकिन शरीयत क्या है, इसकी व्याख्या करने का अधिकार सैयदों ने अपने पास ही सुरक्षित रखा हुआ था।

सैयदों के ये काफिले जब कश्मीर घाटी में नमूदार हो रहे थे तो कश्मीर का शासन स्वात घाटी अथवा राजौरी से आए शाहमीर खानदान के हाथ में आ चुका था जो इस्लाम में मतान्तरित हो गए थे। लेकिन उन्होंने भी इस्लाम को इतना ही स्वीकार किया था कि अब उनकी इबादत का तरीका बदल गया था। उनके रहन-सहन और संस्कृति में कोई फर्क नहीं आया था। जिस वक्त सैयद अली हमदानी कश्मीर में आया तब कश्मीर में शाहमीर वंश का राजा सुल्तान कुतुबुद्दीन (१३७४-१३८९) राज कर रहा था। हमदानी ने श्रीनगर में वितस्ता के किनारे जहाँ काली माँ का प्राचीन मंदिर था, अपना डेरा जमाया। हमदानी के वहाँ डेरा जमा लेने से इरान से आए सैयद और इस्लाम में मतान्तरित हुए कुछ कश्मीरी हिन्दु भी उस स्थान पर आने लगे। हमदानी अपने आप को कुबराविया सिलसिले का सूफी बताता था। दूसरी खेप में आने वाले इन सैयदों ने बुलबुल शाह की विफलता से सबक सीख लिया था। बुलबुल शाह के इतने साल बाद भी सैयद अपने प्रचार और प्रभाव से कश्मीर के लोगों को प्रभावित नहीं कर सके थे। कश्मीर के लोग इस्लाम में मतान्तरित नहीं हो रहे थे। इसलिए दूसरी खेप के इन सैयदों ने अपने कार्य के लिए राज्यसत्ता से साँठगाँठ का दूसरा रास्ता चुना। अब इन सैयदों की रणनीति राजा को ही अपने प्रभाव क्षेत्र में लाकर काबू करना हो गई ताकि मतान्तरण का काम राज शक्ति के बल पर शुरु किया जा सके। इसमें वे कुछ सीमा तक सफल भी हुए। सैयद अली हमदानी ने सुल्तान कुतुबुद्दीन को अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया। सुल्तान ने दो सगी बहनों से शादी की हुई थी। हमदानी के अनुसार यह शरीयत के सिद्धान्त के

खिलाफ था। ऐसा कहा जाता है कि हमदानी के प्रभाव में आकर कुतुबुद्दीन ने शरीयत का पालन करते हुए एक पत्नी को तलाक दे दिया। उसने स्थानीय कश्मीरियों जैसे कपड़े पहनने छोड़ कर सैयदों जैसे कपड़े भी पहनने शुरु कर दिए। लेकिन सैयद अली हमदानी बड़ी मुश्किल से चार महीने श्रीनगर में रहा और यहाँ से मक्का की ओर चला गया। उसके बाद वह फिर १३७९ में घाटी में आया। अबकी बार वह अढ़ाई साल कश्मीर में रहा। तीसरी बार वह १३८३ में एक बार फिर कश्मीर आया। ऐसा कहा जाता है कि सैयद अली हमदानी कश्मीर घाटी के अतिरिक्त लद्दाख, बल्तीस्तान व अस्क्रदू इत्यादि स्थानों पर भी गया और वहां लोगों को इस्लाम की ओर आकर्षित करने का प्रयास करता रहा। इस कालखंड में आने वाले अन्य प्रमुख सैयदों में सैयद जलालुद्दीन बुखारी, सैयद ताजुद्दीन और सैयद हुसैन सिमनानी के नाम आते हैं। इनके संगी साथियों में मीर सैयद हैदर, सैयद जमाल्लुदीन, सैयद कमाले सानी, सैयद जलालुद्दीन अलाई, सैयद रुकनुद्दीन, सैयद मोहम्मद और सैयद एजीजुल्ला इत्यादि थे। लेकिन सैयद अली हमदानी को इस्लाम के प्रचार में सुल्तान कुतुबुद्दीन से जिस गर्मजोशी की आशा थी, उतना शायद उसने नहीं किया। वह पहरावा बदलने तक ही सीमित रहा। बहारिस्ताने शाही के अनुसार सुल्तान कुतुबुद्दीन सैयदों के निर्देशानुसार कश्मीर घाटी में इस्लाम का प्रचार नहीं कर रहा था। इसलिए सैयद अली हमदानी सुल्तान से अनुमति लेकर हज्ज करने के लिए अरब देश में चला गया और वहीं १३८४ में उसकी मौत हो गई।[१०] मृत्यु के समय उसकी आयु ७२ साल थी। उसका शव ताजिकिस्तान ले जाया गया और वहीं उसे दफन किया गया। उसके पाँच साल बाद १३८९ में सुल्तान कुतुबुद्दीन की भी मौत हो गई। जिस काली मंदिर में सैयद अली हमदानी ने शरण ली थी, कालान्तर में वह गिरा दिया गया" और वहाँ मस्जिद का निर्माण किया गया। यह स्थान खानगाह-ए-मौला के नाम से ही प्रसिद्ध होने लगा और आज तक उसी नाम से जाना जाता है। यह अलग बात है कि आज भी कोई इक्का दुक्का कश्मीरी यहाँ आकर चुपचाप मन ही मन काली का भी जाप कर लेता है। इसे भी इतिहास का विचित्र संयोग ही कहा जाएगा कि जिस तैमूरलंग से बचने के लिए ये सैयद भाग कर कश्मीर घाटी में आ गए थे, उस तैमूरलंग ने १३९८ में पंजाब को पार करते हुए दिल्ली पर हमला बोला। वहाँ कत्लेआम किया। लूटपाट की। वहाँ से मेरठ होता हुआ १३९९ में हरिद्वार पहुँचा और वहाँ नरसंहार व लूटपाट की। वहाँ से वह वापिस समरकन्द लौट गया और वहाँ एक मस्जिद का निर्माण किया।

सुल्तान कुतुबुद्दीन की मौत के बाद सुल्तान सिकन्दर कश्मीर का सुल्तान बना और सैयद अली हमदानी की मौत के बाद कश्मीर में उसका उत्तराधिकारी उसका बेटा सैयद महमूद हमदानी बना। सुल्तान सिकन्दर (१३८९-१४१३) जो कश्मीर के इतिहास में बुतशिकन के नाम से जाना जाता है, शाहमीरी वंश का छठा सुल्तान था। कश्मीर में जो काम सैयद अली हमदानी नहीं कर सका, वह काम उसके बेटे सैयद महमूद हमदानी ने कर दिखाया। उसने थोड़े समय में ही सुल्तान सिकन्दर को सुल्तान बुतशिकन में बदल दिया। बुतशिकन सिकन्दर ने लगभग पच्चीस वर्ष तक शासन किया। कश्मीर घाटी में हिन्दुओं का मतान्तरण इसी कालखंड में हुआ। इससे पूर्व कश्मीर घाटी में मुसलमान बनने वाले कश्मीरियों की जनसंख्या नगण्य थी। बुतशिकन के राज्यकाल में कश्मीर घाटी में हिन्दुओं का हर प्रकार से इस्लाम में मतान्तरण किया गया। जिन्होंने इस्लाम स्वीकार करने से इन्कार कर दिया उनको या तो

कत्ल कर दिया गया या डल झील में डुबो कर मार दिया गया। मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया और उनके स्थान पर मस्जिदें बना दी गईं।

लेकिन कश्मीरियों ने इन विदेशी सैयदों और शासकों से साँठगाँठ से उनके बढ़ते प्रभाव का मुकाबला कैसे किया? प्रश्न केवल उन कश्मीरियों का नहीं है जो मतान्तरित नहीं हुए, इनमें वे कश्मीरी भी शामिल थे जो किन्हीं भी कारणों से मतान्तरित हो चुके थे। वे भी भीतरी मन से अपनी पुरखों की परम्पराओं और आस्थाओं को नहीं छोड़ रहे थे। कश्मीरियों की पूजा पद्धति में एक नई पद्धति जोड़ देना तो आसान था लेकिन उनको राष्ट्रीयता के लिहाज से मुसलमान बना लेना इतना सहज नहीं था। इन सैयदों का आम कश्मीरियों पर कोई प्रभाव पड़े, यह इतना सरल नहीं था, क्योंकि कश्मीरी भी अपने आप को दर्शन और ज्ञान विज्ञान में श्रेष्ठ मानते थे। ज्ञान की देवी शारदा का तो निवास स्थान ही कश्मीर को ही माना जाता था। ये कश्मीरी ही थे जिन्होंने मध्य एशिया में कभी बुद्धम् शरण गच्छामि का शंखनाद किया था। अरब या तुर्क या मंगोल कश्मीरी मानस को आच्छादित कर लें, यह संभव ही नहीं था। ''वे कश्मीर की जनता में उतने लोकप्रिय नहीं हो सके।''[३२] लेकिन ये विदेशी सैयद कश्मीरियों में लोकप्रिय क्यों नहीं हुए? इसका उत्तर डॉ. मोहिबुल हसन देते हैं। उनके अनुसार, "ये सूफी ऋषियों के प्रति उदार न थे। इसका एक कारण यह हो सकता है कि सूफियों के पहेलियों जैसे पाण्डित्य पूर्ण उपदेश सीधी साधी जनता के लिए दुरूह बन गए थे। आम लोग सामान्य जीवन दर्शन के प्रति ज्यादा उत्सुक थे। ऋषियों ने जनता की इस मानसिक तथा आध्यात्मिक प्यास बुझाने के लिए लौकिक माध्यम का ही प्रयोग किया जिससे उनका सन्देश अधिक ग्राह्य बन गया। इसके अतिरिक्त इन ऋषियों ने हिन्दु विश्वासों को अपने जीवन में चरितार्थ करके नव दीक्षित मुस्लिम जनता को अतीत से कटने न दिया। यह जनता कुछ समय पहले हिन्दु ही थी। अत हिन्दु संस्कारों के प्रति जागरुक थी। ऋषियों ने इस को सूफियों की अपेक्षा अधिक यथार्थता से पहचान लिया।''[३३]

फारस देश से आने वाले इन सैयदों और मध्य एशिया से आने वाले तुर्क, मुगल व मंगोलों ने अपने प्रयास नहीं छोड़े। वे कश्मीर के केवल इस्लामीकरण से ही संतुष्ट नहीं हुए बल्कि उसके अरबीकरण की ओर भी प्रयासरत रहे। १९९० में कश्मीर से हिन्दु कश्मीरियों का निकलना उसी अभियान का हिस्सा था। कश्मीरी भाषा के सिद्धहस्त साहित्यकार अवतार कृष्ण रहबर की कहानी 'छाया' का एक अंश द्रष्टव्य है। अमीर तैमूरलंग और हजरत अमीर कबीर मीर सैयद अली हमदानी समकालीन थे। उनका देश फारस था। मध्य एशिया का बहुत पुराना और महान देश। हजरत अमीर कबीर इक्कीस वर्षों तक दुनिया के बहुत बड़े-बड़े विद्वानों, ज्ञानियों और सूफियों से भेंट करके १३७० में वापिस अपने देश आए थे। जब वे लौटे तो उन्होंने वहाँ सब कुछ उलट-पुलट देखा। राजनीतिक माहौल बहुत बिगड़ गया था। अमीर तैमूर का दबदबा और प्रभाव हर तरफ बढ़ गया था। उसके द्वारा सैयद हजरातों पर बड़े जुल्म ढाए जा रहे थे क्योंकि वह उनसे विद्वेष रखता था। बहुत से सैयद हजरात देश छोड़कर इधर-उधर जाने लगे थे। हजरात अमीर कबीर सैयद अली भी इन्हीं खराब हालातों के कारण १३७२ में अपने सात सौ मुरीदों के साथ अपना देश छोड़ने के लिए मजबूर हो गए। वे कश्मीर आ गए। उस समय कश्मीर पर सुलतान शाहब्बुद्दीन

का राज था। कुतुबुद्दीन राजकुमार थे। सुल्तान उस वक्त कश्मीर में नहीं थे। वे दूर किसी फौजी मुहिम पर गए हुए थे। इसलिए राजकुमार ने ही हजरत अमीर कबीर शाह हमदान का स्वागत किया था। शाह हमदान उस समय लगभग छः महीनों तक कश्मीर में रहे थे। फिर वे सात बरस बाद दोबारा आए और ढाई बर्षों तक रहे। तीसरी बार वे १३८२ में आए थे। कश्मीर में उनकी तबीयत ख़राब होने के कारण वे जल्दी ही वापिस चले गए और १३८४ में वे स्वर्ग सिधार गए। उनकी मैयत खतलान ताजिकिस्तान पहुँचाई गई और वहीं दफनाई गई। सच तो यह है कि कश्मीर पर हजरत अमीर कबीर तथा उनके पुत्र मीर मोहम्मद हमदानी ने गहरा प्रभाव छोड़ा। यदि हजरत अमीर कबीर सैयद अली हमदानी, अमीर तैमूर के कारण अपना देश छोड़कर कश्मीर आने को विवश न हुए होते तो क्या होता?[१४] यह प्रश्न बहुत गहरा है। अवतार कृष्ण ने इसका उत्तर पाठक के लिए छोड़ दिया है। यदि सैयद अली हमदानी कश्मीर में न आए होते तो कश्मीर में बुतशिकन भी पैदा न होता या फिर राजा सुल्तान सिकन्दर, सुल्तान सिकन्दर से बुतशिकन में न बदल गया होता। कश्मीर का इतिहास गवाह है कि फारस से आए सैयदों ने ही स्थानीय शासकों में यह भावना भर दी कि वे इन विदेशियों के चक्कर में आकर अपने ही बन्धु बान्धवों पर अत्याचार करने लगे। यह ठीक है कि शाहमीर व चक वंश के शासक स्थानीय थे और उनके पूर्वज कश्मीरियों से भी पहले मतान्तरित हो चुके थे, लेकिन कश्मीरियों को मतान्तरित करने का उनका अभियान तैमूरलंग और सैयदों के संघर्ष के बाद ही शुरु हुआ। इसे भी इतिहास का दुर्योग ही कहा जाएगा कि अवसर पाकर तुर्क, मंगोलों के विशाल क्षेत्र मध्य एशिया पर रूस के जारों ने कब्जा कर उन्हें गुलाम बना लिया। उसमें तैमूरलंग का देश तजाकिस्तान भी था। लेकिन इससे कश्मीर के जख्मों पर मरहम तो नहीं लग सकता था? पर जहाँ तक कश्मीर का प्रश्न था वहाँ शासक तो बदलते गए लेकिन यह अभियान नहीं थमा जिसका जाग इन सैयदों ने मध्यकाल में लगाया था। क्या संयोग या दुर्योग है कि तजाकिस्तान तो लम्बे अरसे बाद एक बार फिर रूस के पंजों से मुक्त होकर आजाद होने के कगार पर पहुँच गया लेकिन कश्मीर में फारस के सैयदों के अभियान की परिणति १९९० में हुई जब मतान्तरित कश्मीरियों ने बचे खुचे उन कश्मीरियों को, जो मतान्तरित नहीं हुए थे, बन्दूक के बल पर घाटी से ही बाहर कर दिया।

इतिहास का चक्र यहीं नहीं थमा। रुस की गुलामी से मुक्त हुए ताजिकिस्तान ने घोषणा की कि अब से राष्ट्रनायक तैमूर के ६६०वें जन्मदिन को राष्ट्रीय उत्सव के तौर पर मनाया जाएगा। जो भी तैमूर को लँगड़ा तैमूर या तैमूरलंग कहेगा उसको दंडित किया जाएगा। इस अवसर पर कश्मीर के प्रसिद्ध कहानीकार अवतार कृष्ण पूछते हैं, क्या हम कश्मीरियों को तैमूर को अमीर तैमूर कहना चाहिए या तैमूरलंग?[१५] तैमूरलंग के कारण ही सैयद अली हमदानी कश्मीर घाटी में आए। उस दिन से जो घटनाक्रम चला उसी के चलते १९९० में उन कश्मीरियों को कश्मीर छोड़ना पड़ा जो न तो शाहमीर वंश के शासन काल में, न चक वंश के शासन में, न मुगलों के शासन में और न ही अफगानों के शासन में मतान्तरित हुए थे। इसका उत्तरदायी हमदानी को माना जाए या तैमूरलंग को? यह प्रश्न आज भी कश्मीर की घाटियों में गूँजता है। तैमूरलंग को तो फिर भी सैकडों साल बाद उसके देश तजाकिस्तान ने अपना राष्ट्र पुरुष घोषित कर दिया और उसे लँगड़ा कहना दंडनीय अपराध घोषित कर दिया। सैयद अली हमदानी भी कश्मीर में

''मौला'' के रूप में जम गए। लेकिन उन कश्मीरियों का क्या जो आज भी अपने ही देश में दर दर भटक रहे हैं, केवल इसलिए कि उन्होंने कश्यप ऋषि का रास्ता छोड़ कर हमदानी का रास्ता नहीं पकड़ा। अपनी कहानी में अवतार कृष्ण ने यही प्रश्न उठाया है कि वे तैमूर को तैमूर ही कहें या तैमूरलंग कहें?

मुख्य प्रश्न यह है कि तैमूरलंग के भय से भाग कर कश्मीर में आने वाले सैयद, उस समय के शासकों को प्रभावित कैसे कर सके? अतिथि सत्कार कश्मीरियों की परम्परा रही है। लेकिन अपने आप को अलग-अलग सिलसिलों के सूफी बताने वाले इन सैयदों को शाहमीर वंश के शासकों ने इतना मुँह क्यों लगाया? जिस वक्त सैयद अली हमदानी भाग कर कश्मीर घाटी में पहुँचा, उस समय कश्मीर में शाहमीर ख़ानदान के राजा कुतुबुद्दीन का शासन था। यह ठीक है कि उसने हमदानी को एक सीमा से आगे नहीं बढ़ने दिया लेकिन फिर भी उसने हमदानी के कहने पर अपनी एक पत्नी को तलाक दे दिया। कुतुबुद्दीन ने दो सगी बहनों से विवाह किया हुआ था। हमदानी का मानना था कि दो सगी बहनों से शादी शरीयत के खिलाफ है। इसे भी हमदानी का ही प्रभाव कहा जा सकता है कि कुतुबुद्दीन ने कश्मीरियों का लिबास त्याग कर विदेशी सैयदों का लिवास पहनना शुरु कर दिया था। हमदानी इतने भर से सन्तुष्ट नहीं था। उसका जोर शायद कश्मीरियों को किसी भी तरह इस्लाम मत में मतान्तरित करने का था। लगता है कुतुबुद्दीन इस सीमा तक जाने को तैयार नहीं हुआ था। यही कारण था कि सैयद अली हमदानी कश्मीर में ज्यादा देर रुका नहीं। वह बार-बार आया जरुर लेकिन निराश होकर ही कश्मीर से गया। धीरे-धीरे आने वाले सैयदों की संख्या भी बढ़ती गई और शाहमीर खानदान के राजाओं या सुल्तानों पर उनका प्रभाव भी। सैयद अली हमदानी के बाद मोर्चा उसके बेटे सैयद महमूद हमदानी ने संभाला। उसने जरुर कुतुबुद्दीन के वारिस सुल्तान सिकन्दर को बुतशिकन बना देने में कामयावी हासिल की। कश्मीर घाटी में ज्यादा मतान्तरण इसी बुतशिकन के शासन काल में हुआ। लेकिन लेकिन मूल प्रश्न अभी भी अनुत्तरित है। सैयदों के शिकंजे में शाहमीर वंश के राजा कैसे आ गए? इसका मुख्य कारण शाहमीरियों का मतान्तरण के कारण अपने समाज से कट जाना ही था।

निष्कर्ष

कश्मीर घाटी में तो अभी तक व्यापक स्तर पर मतान्तरण नहीं हुआ था लेकिन जिस क्षेत्रों शाहमीर वंश के लोग आए थे, वह इस्लाम की जद में आ चुका था। शाहमीर वंश भी इस्लाम में जा चुका था, इसलिए वह अपने मूल समाज में कट गया था या फिर बहिष्कृत हो चुका था। अनेक अवसरों पर किए जाने वाले कर्मकांड कौन कर सकता है, यह नया संकट था। इस्लामी पद्धति के कर्मकांड कैसे सम्पन्न किए जाएँ, उसके लिए विशेषज्ञ कहां से आएँगे। ये सब नए प्रश्न थे। जब तक शाहमीर सुल्तान नहीं बने थे तब तक शायद समस्या थी भी नहीं। नए पंथ या सांप्रदाय इस्लाम के कर्मकांड करने की ज्यादा आवश्यकता भी नहीं थी। अब शाहमीर राजा हो गए थे। इसलिए विभिन्न अवसरों पर इन कर्मकांडों से बचा नहीं जा सकता था। पुराने पुरोहित न इन मतान्तरित शाहमीरियों के कर्मकांड करवाने की स्थिति में रहे थे और न राजा इनको बुलाने की स्थिति में। इसी पृष्ठभूमि में तैमूरलंग से पिट कर सैयद कश्मीर आ पहुँचे। सैयद मुसलमानों के पुरोहित थे। अली की वंश परम्परा में से होने के कारण इस्लाम में उनका रुतबा भी बड़ा था। वे एक अर्थ में अरब के ब्राह्मण थे। नए नए मतान्तरित शाहमीरियों को इन्हीं

नए पुरोहितों की तलाश थी। यही कारण था कि दरबार में सैयदों की पहुँच भी बढ़ी और प्रभाव भी।

सन्दर्भ :

१. William Croock ,Tribes and Castes of the North -Western India,1896

२. R.K.Parimu, Muslim rule in Kashmir, P. 104

३. K.N.Pandita (editor) Baharistan-e-Shahi, Gulshan books, Srinagar, 2016, p. 29

४. R.K.Parimu, Muslim Rule in Kashmir, p. 103.

५. C.E.Tyndale Biscae, Kashmir and its Habitants, Surabhi prakashan, Delhi, 1998, p. 70-71

६. K.N.Pandita (editor) Baharistan - E -Shahi, p. 28

७. M.K.Kaw (ed), Kashmir and it's people, Aph publishing, Delhi, 2004, p. 107

८. तारीखें फिरोजशाही, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, पृ. २३

९. तारीखें फिरोजशाही, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, पृ. २७

१०. K.N.Pandita (editor) Baharistan-e-Shahi, Srinagar, 2016 p. 30

११. K.N.Pandita (editor) Baharistan-e-Shahi, Srinagar, 2016, p. 29

१२. काशी नाथ दर, काशी नाथ दर रचनावली, कला, भाषा व संस्कृति अकादमी जम्मू, प्रथम संस्करण, पृ. ७०

१३. काशी नाथ दर रचनावली से उद्धृत, पृ. ७०-७१

१४. गौरीशंकर रैणा, कश्मीरी की प्रतिनिधि कहानियाँ, साहित्य अकादमी, दिल्ली, संस्करण २०१७, पृ. ८२-८३.

१५. गौरीशंकर रैणा, कश्मीरी की प्रतिनिधि कहानियाँ, २०१७, पृ. ८३

सलाहकार, संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार
पूर्व कुलपति, हिमाचल प्रदेश
केन्द्रीय विश्वविश्वविद्यालय धर्मशाला

भारत में रोहिल्ला शक्ति का विस्तार और क्षेत्रीय शक्तियों से संघर्ष

डॉ. नवीन सी. गुप्ता

शोध सारांश

अफगान के मूल निवासी रूहेलों ने अपनी शक्ति के बूते मध्य हिमालय क्षेत्र के कुमाऊं और गढ़वाल के सैन्य अभियानों के द्वारा, साथ-साथ रुहेलखंड की सरजमी को भी अपने अधिकार में ले लिया था। यह ऐसे ऐतिहासिक घटनाक्रम थे, जिसने धीरे-धीरे भारतीय मध्यकालीन इतिहास की धारा को मोड़ने का काम किया, जिसकी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मीमांसा करना ही इस शोध पत्र का उद्देश्य है। यह तथ्य सर्वविदित है कि भारतीय संस्कृति ने हमेशा शरणागत की रक्षा का उद्घोष और महान आदर्श लेकर जिन विधर्मी शरणार्थियों को अपने यहां शरण दी, उन्होंने हमारी संस्कृति और सभ्यता के आदर्शों व नैतिक मूल्यों को व्यापक क्षति पहुंचाते हुए यहां पर आधिपत्य स्थापित करने का काम किया, जो उनके मूल चरित्र और उनकी प्रवृत्ति को दर्शाता है। भारतीय इतिहास इन घटनाओं को अपने पन्नों में उसी रूप में सहेजे हुए हैं, जैसे उनका वर्णन पेशेवर इतिहासकारों किया है। लेकिन इन घटनाओं के पीछे जो वास्तविक तथ्य छिपे हुए हैं उनका अवलोकन करके अनावरण करना वर्तमान समय में इतिहासकारों, शोध छात्रों का बहुत बड़ा दायित्व है। क्योंकि अब प्रामाणिक इतिहास लेखन के लिए ऐसी परिस्थितियां और पृष्ठभूमि तैयार हो रही है, जिसके आधार पर तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया पूर्वाग्रह से ग्रस्त इतिहास अपने वास्तविक रूप में सभी के समक्ष आ सकेगा। मेरे विचार से इस शोध पत्र के माध्यम से इन महत्वपूर्ण बिंदुओं पर न केवल प्रकाश डालने का मेरा प्रयास सफल होगा बल्कि उन अनछुए ऐतिहासिक तथ्यों का भी खुलासा करेगा, जो अब तक अतीत के गर्भ में दबे हुए हैं।

संकेत शब्द : *रुहेला, रुहेलखण्ड, कुमाऊं, शरणागत, प्रवृत्ति।*

'रोह' 'रुहेला' और रुहेलखण्ड' इन तीन शब्दों में उस रुहेला-शक्ति का उद्भव और पराभव का इतिहास समाहित है जिससे मध्यकालीन भारत के इतिहास की धारा को मोड़ने का काम किया। अफगानिस्तान से रोजी-रोटी की तलाश में प्रवर्जन करके भारत में आने वाली इस क्षेत्रीय शक्ति ने अपने सैन्य अभियानों में रुहेलखण्ड के साथ-साथ मध्य हिमालय क्षेत्र में स्थित कुमायूं और गढ़वाल के सैन्य-अभियानों के द्वारा (आधुनिक) उत्तराखण्ड के इतिहास को भी प्रभावित किया।

रूहेलों के भारत में आने की कहानी भी कम रोचक नहीं है। जब इनके सरदार दाऊद खां ने पहली बार १७०७ ई. में प्रवेश किया व अपना पहला ठिकाना हरिद्वार में बनाया[१], जो उत्तराखण्ड का प्रमुख जनपद है। यहां रहते हुए उसने अच्छी नस्ल के घोड़ों की खरीद-फरोख्त शुरू की[२] और धीरे-धीरे घुड़सवार सैनिकों को भी भर्ती कर लिया ताकि अपनी सैन्य शक्ति का विस्तार कर सके।

यही वह समय था, जब दाऊद खां ने कुमायूं के राजा देवीचन्द के यहां मुलाजमत कर ली।[३]

राजा देवीचन्द का विश्वास हासिल करने के बाद राजा ने उसे अपने रिसाले (माल) का मुखिया नियुक्त किया था[४] और अपने 'कठेहर' (आधुनिक रूहेलखण्ड) क्षेत्र के विजय अभियान से पूर्व दाऊद कुमायूं में ही रहा था।[५] 'रुहेलखण्ड' की भौगोलिक स्थिति ने प्राचीन काल में ही बाह्य राजनैतिक शक्तियों को बरबस ही अपनी ओर खींचने का काम किया। इसके पूर्व में गोमती नदी से पश्चिम में यमुना दक्षिण में चम्बल और उत्तर में हिमालय की तलहटी तक आच्छादित इतिहास ने न जाने कितने उतार चढ़ाव देखे, जिसका प्रभाव इसके निकटवर्ती हिमालय क्षेत्र पर भी व्यापक रूप में दिखाई पड़ा।

मध्यकाल में जब इसे 'कठेहर' क्षेत्र के नाम से जाना जाता था, तो इसकी दक्षिण पश्चिम सीमा पर गंगा नदी, उत्तरी सीमा पर कुमायूं का पर्वतीय क्षेत्र तथा पूर्वी सीमा से लगा हुआ अवध का क्षेत्र था। जिसके अन्तर्गत ही वर्तमान रूहेलखण्ड तक का सम्पूर्ण क्षेत्र सम्मिलित था।[६] अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही दिल्ली की 'मुगलसत्ता' की पकड़ कमजोर हो गई। परिणाम स्वरूप परिस्थितियों का लाभ उठाकर तमाम जागीरदारों और जमींदारों के मध्य वर्चस्व की स्थापना को लेकर संघर्ष छिड़ गए।

इसी समय अफगानिस्तान के रौह प्रदेश से आए रूहेला पठानों ने उत्तर प्रदेश के 'कठेहर' क्षेत्र में प्रवेश किया था।[७] ये रूहेले मूलतः तो युसुफजई कबीले से सम्बन्धित थे, जिनके लिए ''पठान'' शब्द का प्रयोग किया जाता था।[८] पश्तो 'भाषा' में 'रूहेल्लाह' अथवा रूहेल्लाही' शब्द अफगानिस्तान के वाशिन्दों के लिए इस्तेमाल किया जाता था।[९]

'दाऊद' खां से पूर्व भी अकबर के शासन काल में यह 'रूहेले' जीविकोपार्जन के लिए बड़ी संख्या में हिन्दुस्तान में आए और मुगल सेना में भर्ती हो गए थे।[१०] १५वीं शताब्दी के मध्य दिल्ली में वहलोल लोधी के अधीन अफगान सत्ता की स्थापना के साथ अनेक अफगानी प्रजातियों ने अपना रूख हिन्दुस्तान की तरफ किया। यह वहीं रूहेले परिवार थे, जो धीरे-धीरे मुगल सेना में भर्ती होते गए।

इनके विषय में जो जानकारी मिलती है, उसके आधार पर इस नस्ल के लोग शारीरिक रूप में वलिष्ठ तथा ऊंची कद-काठी के थे, जो मध्य युग में मार्गों पर लूटपाट, राहजनी, मवेशियों का अपहरण जैसे हिंसक कार्यों में संलिप्त रहते थे। किन्तु उनका मूल चरित्र था, कि अगर कोई इनके साथ बुरा व्यवहार करता था, तो वह उससे बदला जरूर लेते थे और यदि कोई अफगान अपने जीवन में इस काम को पूरा नहीं कर पाता तो इस प्रतिशोध का काम उसकी आने वाली पीढ़िया पूरा करती हैं। शरणागत की रक्षा करना भी इनका मौलिक गुण था।

पूर्व में जिक्र किया जा चुका है कि रूहेलखण्ड क्षेत्र में फैली अराजकता के कारण रूहेले निरन्तर शक्तिशाली होते गए। १७०७ ई. में रूहेला सरदार दाऊद खां आदि प्रमुख थे जो शनैः शनैः मुहम्मद खां के नेतृत्व में अत्यन्त प्रभावशाली बनकर उभरे और रूहेलखण्ड में एक छत्र साम्राज्य स्थापित करने में कामयाब रहे।[११] रूहेलों की इस कामयाबी के साथ ही १८वीं शताब्दी के मध्य तक इस क्षेत्र में इतनी बड़ तादाद में रूहेलों का आगमन हुआ कि यह क्षेत्र ही रूहेलखण्ड कहा जाने लगा।[१२]

वास्तव में इस क्षेत्र की भौगोलिक और राजनैतिक परिस्थितियों के साथ-साथ रूहेलों की दौलत और शोहरत की ख्वाहिश उन्हें इस क्षेत्र में खींच लाई। १७१९ ई. में जब मुगल बादशाह शाहजादा रोशन अख्तर मुहम्मद शाह के नाम से मुगलसत्ता पर काबिज हुआ, तो दक्षिण के सूबेदार आसिफ जहां ने बगावत कर दी।[३३] ऐसी स्थिति में आसिफ जहां का दमन करने के लिए जब संयुक्त रूप में दिल्ली से शाही सेनाओं ने कूच किया तो यह सेनाएं आगरा में जाकर रूकी थी।

शाही हुक्म से दक्षिण के संयुक्त अभियान के समय सभी स्थानों से फौजों को भेजा गया। उस समय मुरादाबाद के सूबेदार अजमत उल्ला खां ने भी अपनी फौज शाही सेना की खिदमत में भेजी। जिसमें दाउद खां रिसालदार के पद पर था।[३४] फतेहपुर सीकरी के बीच में टोड़ा नामक स्थान पर सैयद हुसैन खां का कत्ल हो गया था। परिणाम स्वरूप कुछ समय बाद दाउद खां ने बदायूं की सरकार में नौकरी कर ली। बाद में उसने कुमायूं में अल्मोड़ा के राजा देवी चन्द के यहां मुलाजमत कर ली और धीरे-धीरे अपने अन्य अफगान साथियों को वहां एकत्रित करना शुरू कर दिया और अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा ली थी।

किन्तु परिस्थितियों ने ऐसा मोड़ लिया कि कालान्तर मं कुमायूं (अल्मोड़ा) के चन्द राजा देवी चन्द तथा मुरादाबाद के सूबेदार अजमत उल्ला खां के बीच सम्बन्धों में दरार आ गई। इसी समय अजमत उल्ला खां ने जो चाल चली उसकी भनक राजा देवी चन्द को नहीं लग सकी। अजमत ने दाउद खां को, जो राजा देवीचन्द के रिसाले का प्रमुख था, धन का लालच देकर खरीद लिया। इसलिए जब राजा देवीचन्द और अजमत खां ने मध्य संघर्ष शुरू हुआ तो देवी चन्द को भरोसा था कि दाउद खां उसका रिसालदार है, इसलिए उसकी मदद करेगा। किन्तु इतिहास इस वक्त एक और करवट ले रहा था। राजा देवी चन्द को दाऊद खां से मदद की बजाय धोखा मिला। परिणाम स्वरूप राजा देवी चन्द को भाग कर अपनी जान बचानी पड़ी। दाऊद खां के साथ मिलकर अजमत उल्ला खां ने राजा देवी चन्द को बन्दी बनाने की पूरी योजना बना ली थी, किन्तु अपने कुछ विश्वासपात्र कुमाऊंनी सैनिकों की वफादारी से अजमत उल्ला की यह चाल खाली गई।

इतिहासकारों ने इस घटना का वर्णन किया है कि राजा देवी चन्द के समय में ही शाहजादा साबिर शाह नामक एक व्यक्ति ने खुद को तैमूर का वंशज बताकर रूहेलखण्ड पर अधिकार करने को मुगलबादशाह के खिलाफ सैनिक मदद मांगी जिसमें राजा देवीचन्द ने दाऊद खां के नेतृत्व में साबिर शाह की सैन्य मदद को कुमाऊंनी सेना भेजी थी। किन्तु दाउद खां धन के लालच में कुमाऊंनी सेना का नेतृत्व छोड़कर राजा देवीचन्द के विरुद्ध अपने सैनिकों को साथ लेकर अजमत उल्ला खां से मिल गया था।[३५]

घटनाक्रम भिन्न हो सकता है, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि इससे राजा देवीचन्द को गहरा आघात पहुंचा था। अपनी पराजय से निराश राजा देवीचन्द ने दाऊद खां से प्रतिशोध लेने का निश्चय तो कर लिया, किन्तु राजा भली भान्ति जानता था कि सीधे टककर में अपनी योजना में सफल नहीं हो सकेगा और दाऊद खां सूबेदार अजमत उल्ला खां का सहयोग मिलना भी उसके लिए भारी पड़ेगा। इसलिए देवी चन्द ने भी बड़ी चतुराई से काम लिया। वह जानता था कि दाऊद खां की इस समय सबसे बड़ी जरूरत

पैसा है, इसलिए उसने दाऊद खां को संदेश भिजवाया कि जितने दिन भी उसकी खिदमत में रहा उस अवधि के बकाया वेतन का अल्मोड़ा जाकर हिसाब कर लें। राजा को उसका बकाया वेतन देने में कोई गुरेज नहीं है।

दाऊद खां लालच वश राजा देवीचन्द के झांसे में आ गया और उसके बुलावे पर तनख्वाह का हिसाब करने राजा के पास अल्मोड़ा गया।[१६] शुरू में तो राजा देवी चन्द ने दाऊद के प्रति व्यवहार में बड़ी नरमी दिखाई, किन्तु मौका मिलते ही उसने दाऊद खां व उसके साथ आए सैनिकों को कैद में कर लिया।[१७] कैद के दौर में प्रतिशोध की आग में जल रहे, १७२१ ई. में राजा देवीचन्द के सैनिकों ने कुछ दिनों तक तो दाऊद खां को घोर यातनाएं दी, उसकी गर्दन की नसें खिंचवाई तथा बाद में उसको सैनिकों समेत कत्ल करवा के उसकी लाश को अल्मोड़ा में ही दफन करा दिया गया।[१८]

उधर जैसे ही रूहेलों को अपने सरदार दाऊद खां के कत्ल की खबर मिली, उनके खेमें में खलबली मच गई, क्योंकि दाऊद खां के नेतृत्व में ही रूहेला जाति के इस क्षेत्र में अपनी शक्ति और प्रभाव का विस्तार किया था। अब रूहेलों के सामने यह गंभीर प्रश्न था कि रूहेलों का नेतृत्व कौन करेगा। रूहेला प्रमुख सरदार बख्शी खां, दुन्दे खां, सदर खां, पाइन्दा खां, फतेह खां, जो बड़े ही निर्भिक और पराक्रमी होने के साथ-साथ दूरदर्शी भी थे इन सबने परस्पर विचार-विमर्श करने के बाद यह तय किया कि उनको हर हाल में हिन्दुस्तान में ही रहना होगा। क्योंकि उन्होंने अपने खून पसीने के बूते पर जिस साहस और मेहनत से केठेहर रूहेलखण्ड पर प्रभुत्व स्थापित किया था, उसे बिना संघर्ष के ही त्यागना रूहेला शक्ति के लिए आत्मघाती कदम उठाने जैसा था।

अन्ततः रूहेलों ने कठेहर में ही रहकर दाऊद खां के दत्तक पुत्र (जो जाट जाति का था) १४ वर्षीय अली मुहम्मद खां को अपना सर्वमान्य नेता स्वीकार किया।[१९] जिसकी अगुवाई में ही रूहेलखण्ड तथा अन्य इलाकों में राजनीतिक शक्ति के विस्तार का काम शुरू हुआ। इस समय भले ही उसकी उम्र कम थी किन्तु उसने अपनी सैनिक प्रतिभा के बल पर रूहेलों का नेतृत्व बड़े नाजुक दौर में संभाला।

इसी समय इन रूहेला सरदारों ने और उनके सैनिकों ने पर्वतीय आंचल से निकलकर मुरादाबाद के हाकिम अजमत उल्ला खां के यहां १७२२ ई. में पनाह ली।[२०] चूंकि अजमत उल्ला खां पर दाऊद खां का बहुत बड़ा अहसान था, इसलिए अजमत उल्ला खां ने वे क्षेत्र पुनः अली मुहम्मद खां को दे दिए जो दाऊद खां के अधिकार में रहे थे। उधर १७३९ में दिल्ली में नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात अव्यवस्थित मुगल सेना के बहुत से अफगान सैनिक आजिविका की तलाश में कठेहर चले आए और रूहेलों की फौज में भर्ती हो गए।[२१]

रूहेलों के इस शक्ति संवर्द्धन से उनका मुगल शक्ति और सत्ता से टकराव अवश्यंभावी सा हो गया। जब नवाब अली मुहम्मद खां की शक्ति बढ़ने की खबरें शाही दरबार में पहुंची तो वजीर-ए-आजम कमरूद्दीन अली ने मुहम्मद अली खां को दिल्ली आकर सम्राट से मुलाकात करने की सलाह दी।[२२] अली मुहम्मद ने भी अपने हमदर्द होने के नाते वजीर-ए-आजम की सलाह को पूरी तरजीह तो दी, मगर वह दिल्ली खुद नहीं पहुंचा। उसने अपने नायब जयसुखराय को दिल्ली भेजा। मुगल सम्राट को अच्छी तरह

याद था कि अजमत खां और दाऊद खां के रिश्ते बड़े ही नजदीकी रहे हैं। इसलिए अली मुहम्मद खां भी अहमत उल्ला खां के कृपा पात्रों में एक हैं।

ऐसी स्थिति में नाराज सम्राट ने अली मुहम्मद खां की रूहेलखण्ड क्षेत्र में बढ़ती शक्ति का दमन करने को बनाई योजना के तरह अजमत उल्ला खां को मुरादाबाद और संभल की सूबेदारी से हटाकर उसके स्थान पर हिन्दू हरनन्द खत्री को नया नाजिम बनाया।[२३] दिल्ली तमगा हासिल करके हरनन्दन खत्री ने अली मुहम्मद के नायब जयुसख राय को आंवला पहुंचने से पहने ही मार देने का निश्चय लिया, इसके लिए उसने सिकन्दराबाद, गढ़मुक्तेश्वर तथा हापुड़ में गंगा के किनारे सेनाओं की तैनाती कर दी[२४] ताकि जयसुख राय बचकर निकल न पाए। जयसुख को जब हरनन्दन खत्री की इस मोर्चेबन्दी की भनक लगी, तो वह रास्ता बदल कर मेरठ के रास्ते आंवला के लिए रवाना हुए। किन्तु हरनन्दन खत्री का रिसालदार संतोष राय उसका पीछा करता हुआ, मेरठ तक पहुंच गया। दोनों पक्षों के मध्य हुए संघर्ष को मेरठ के नाजिम कायस्थराय ने मध्यस्थता करके सुलझाया। इसे बाद ही जय सुखराय मेरठ के रास्ते आंवला पहुंच सका था।[२५]

उधर जब हरनन्दन खत्री ने सूबेदार के रूप में मुरादाबाद की कमान संभाली तो उसने रूहेलखण्ड से रूहेलों का पूरी तरह सफाया करने का निश्चय किया। जब यह खबर अली मुहम्मद तक पहुंची, तो उसने पहले तो उससे शान्ति वार्ता की गुजारिश की किन्तु जब हर नन्दन मुरादाबाद से चलकर आरिल नदी के किनारे 'डल' एवं 'जरी' गांवों के निकट दलबल सहित आ डटा तो, दोनों पक्षों में संघर्ष हुआ।[२६]

रूहेले अव्यवस्थित मुगल सेना पर हावी होते चले गए और अन्ततः वे उस शिविर में जा घुसे जहां सूर्योदय के समय हरनन्दन खत्री भगवद् उपासना में लीन थे। वहीं शिविर में ही हर नन्दन खत्री और उनके बेटे मोतीलाल को मौत के घाट उतार दिया गया।[२७] मुगलों की सैन्य शक्ति पर भी रूहेलों का कब्जा हो गया। सम्पूर्ण कठेहर पर अधिपत्य स्थापित कर, नबाव अली मुहम्मद खां ने रूहेला सरदार पाइन्दा खां को पीलीभीत जीतने का महत्त्वपूर्ण काम सौंपा, यहां बंजारे देशपाल को हराकर रूहेलों ने अपना अधिकार कर लिया।[२८] जो अली मुहम्मद खां ने हाफिज रहमत खां को बतौर तोहफा भेंट किया था।[२९] इस प्रकार वर्ष १७४३ ई. तक अली मुहम्मद के नेतृत्व में रूहेलों की शक्ति का रूहेलखण्ड में पूर्णरूप से विस्तार हो चुका था। इसलिए अब उन्होंने अपना अगला निशाना कुमाऊं को बनाया जो उनकी बढ़ती विजय लालसा का द्योतक था। दूसरे अफगानिस्तान के पहाड़ी इलाके के मूल निवासी होने के कारण वे कुमाऊं क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का पूरा तरह जायजा ले चुके थे।

उधर जिन राजनैतिक परिस्थितियों ने इस कुमाऊं और गढ़वाल के सैन्य अभियानों की पृष्ठभूमि तैयार की उन पर दृष्टिपात करना नितान्त आवश्यक होगा। इनमें सबसे प्रमुख कारण चन्द राजा देवी चन्द द्वारा अली मुहम्मद खां के पिता दाऊद खां की १७२१ ई. में हत्या का बदला लेना था।[३०] इसके साथ ही रूहेलखण्ड की सीमा से सटे अवध-राज्य से भी रूहेलों को हमेशा भय बना रहता था, क्योंकि यहां का नवाब कुमाऊं के तराई क्षेत्र में स्थित भू-भाग को लगातार अपने अधिपत्त्य में लेने की कोशिशें कर रहा

था। रूहेलखण्ड और अवध क्षेत्र के कतिपय हिन्दू अमीर मुगल सम्राट से इन रूहेलों के द्वारा किए जा रहे अत्याचारों की शिकायतें करते रहते थे ताकि उन पर मुगल सत्ता का अंकुश बना रहे। चूंकि अली मुहम्मद खां दूरदर्शी था, इसलिए वह इस तथ्य को भली भान्ति समझ चुका था कि भविष्य में यदि कोई संकट खड़ा होता है तो मध्य हिमालय क्षेत्र में स्थित पर कुमाऊं का इलाका ही उनका पनाहगाह बन सकता है जहां वे मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा ज्यादा सुरक्षित होंगे।

हिमालय के मध्य क्षेत्र में स्थित कुमाऊंनी राज्य पर चन्द राजवंश के राजाओं ने लम्बी अवधि तक शासन किया। औरंगजेब के राज्यकाल से ही मुगलों ने कुमाऊं पर अधिपत्य स्थापित करने के प्रयास शुरू कर दिए थे। चन्द राजा बाजबहादुर का शासनकाल १६३८-१६७८ई. तक माना जाता है।[३१] बाजबहादुर के समय तक चन्द साम्राज्य की व्यवस्था संतोषजनक रही। किन्तु उसके बाद इसके शासक परस्पर संघर्षों और षड्यन्त्रों में संलिप्त रहे। परिणाम स्वरूप एक शताब्दी के गुजरने के साथ ही यह राजवंश अराजकता और अव्यवस्था के कारण कमजोर हो गया। सत्ता पर इनकी पकड़ ढीली होने का लाभ गोरखाओं ने उठाया। परवर्ती चन्द शासकों; देवीचन्द, अजीत चन्द, कल्याण चन्द एवं दीपचन्द के कृत्यों से जनमानस में असंतोष फेला जिसका दमन करने के लिए कठोर नीति अपनाई गई।

इससे पूर्व भी बाजबहादुर का पुत्र युवराज उद्योत चन्द उत्तराधिकार की प्राप्ति के लिए षड्यन्त्र रच चुका था तथा उसके बाद राजा जगत चन्द के उत्तधिकारी देवी चन्द ने १७२०-१७२६ ई. तक शासन की बागडोर तो संभाली किन्तु इस अवधि में भी सत्ता के लिए षड्यन्त्रों का सहारा लिया गया।[३२] देवीचन्द के बेटे कल्याण चन्द ने १७३० से १७४८ तक १८ वर्ष शासन किया, किन्तु उसमें प्रशासनिक क्षमता और योग्यता का अभाव था।[३३] कल्याण चन्द की दमनात्मक और कठोर नीतियों के कारण ही कुमाऊं पर रूहेलों ने दो सैन्य अभियान किए। इसके साथ ही कल्याण चन्द की अदूरदर्शिता का खामियाजा उसका सहयोग करने वाले गढ़वाल नरेश को भी भुगतना पड़ा।

राजा कल्याण चन्द ने सत्ता संभालते ही, अधीनस्थ जमीदारों और अपने सहयोगियों के विरुद्ध दमनात्मक कदम उठाए। ऐसे ही जमीदारों में एक दुलीचन्द (हिम्मत गुसाई या हिम्मत सिंह रौतेला) के नाम से जाना जाता था जिसके साथ कल्याण चन्द ने पाश्विक व्यवहार करते हुए उसके नाक कान कटवा लिए और उसकी आंखें निकलवा ली गई।[३४]

मुर्माहित दुलीचन्द १७४३ ई. में अपने प्राण बचाने के खातिर उस समय रूहेलखण्ड के शासक अली मुहम्मद की शरण में जा पहुंचा।[३५] क्योंकि वह जानता था कि कल्याण चन्द को सबक सिखाने का इस समय अली मुहम्मद खां के अलावा कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं। जैसा कि रूहेलों के मूल चरित्र में सम्मिलित गुण था, शरण में आए हुए की रक्षा करना, इसलिए अली मुहम्मद खां ने जब हिम्मत गुसाईं को उसकी पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन दिया तो उसके मन में कल्याण चन्द के प्रति सुलग रही विद्रोह की आग धधक उठी। उसने उपयुक्त अवसर जानकर चन्द राज्य की न केवल कमजोरियां अली मुहम्मद को गिनाई बल्कि उसे अपने वालिद 'दाऊद खां' की हत्या का बदला लेने को भी उकसाया। उधर 'हिम्मत सिंह' के मुहम्मद अली की शरण में पहुंचने की खबर राजा कल्याण चन्द के विश्वास पात्र अधिकारियों के माध्यम से उस तक पहुंची, तो कल्याण चन्द ने अपने कुछ विश्वास पात्र सिपाहियों को हिम्मत सिंह की हत्या

करने का दायित्व सौंपा। गुप्त रूप से बदायूं पहुंचे इन सैनिकों ने अवसर पाकर अली मुहम्मद की सैन्य छावनी में ही दुलीचन्द (हिम्मत गुसाईं) को मौत के घाट उतार दिया।[३६] जब उसका समाचार अली मुहम्मद को मिला तो उसने बिना देर लगाए अपने वालिद दाउद खां की हत्या का प्रतिशोध लेने को कुमायूं पर हमले की योजना को अमली जामा पहनाया।

सन् १७४३-४४ ई. में अली मुहम्मद खां ने अपने विश्वास पात्र, हाफिज रहमत खां, के नेतृत्व में पाइंदा खां तथा बख्शी खां सरदार अपने दुन्देखां फतेहखां, करमखां को विशाल सेना के साथ कुमाऊं पर आक्रमण करने को भेजा।[३७] रूहेलों की सेना ने सबसे पहले रूद्रपुर पर हमला बोला और शिवदेव जोशी के नेतृत्व में संघर्षरत कुमाऊंनी सेना को पराजित कर दिया।[३८] रूहेला सैनिकों ने काठगोदाम के निकट स्थित 'बराखेड़ी' के किले पर कब्जा कर लिया। उन्होंने 'रूद्रपुर' में अपनी चौकी स्थापित करके कुमाऊं का अग्रगामी सैन्य अभियान शुरू किया।[३९]

जब राजा कल्याण चन्द को 'रूद्रपुर' में अपनी सेना की पराजय तथा रूहेलों की सेना के अल्मोड़ा की ओर कूच करने की सूचना मिली तो उसने अपनी सेना को मोर्चे पर डटने का आदेश दिया। किन्तु पर्वतीय युद्ध कला में पूरी तरह दक्ष होने के कारण रूहेले कुमाऊंनी सैनिकों की घेराबन्दी भेदकर आगे बढ़ जाने में कामयाब हो गए और आगे बढ़ती हुई यह सेनाएं अल्मोड़ा तक पहुंच गई।[४०] रामगढ़ प्यूड़ा एवं सुआल नदी के रास्ते रूहेलों की सेना ने अल्मोड़ा में प्रवेश किया। परिस्थितियां विपरीत हो चुकी थीं कुमाऊंनी सेना के पैर उखड़ गए और उसे पलायन करने को विवश होना पड़ा।[४१]

राजा कल्याण चन्द अफगानों के इस दुस्साहस से इतना भयभीत हुआ कि रात्रि के समय मौका पाकर सपरिवार अल्मोड़ा से भागकर पहले गैरमांडा (गैरसैण) तथा बाद में वहां से गढ़वाल नरेश प्रदीपशाह से मदद मिलने की आशा से गढ़वाल पहुंचा।[४२] इस घटना क्रम का उल्लेख 'टिहरी' क्षेत्र के पुरातात्त्विक-अभिलेखों में भी मिलता है।[४३]

अगले दिन ही रूहेलों की सेना ने अल्मोड़ा के किले पर अपना अधिकार कर लिया। यह अली मुहम्मद खां की कुमाऊं पर पहली विजय थी।[४४] क्योंकि इस्लाम के उदय के बाद प्रथम बार किसी मुस्लिम शासक ने अल्मोड़ा पर सैन्य अभियान के माध्यम से जीत हासिल की थी।

उधर यह भी माना जाता है कि राजा सिरमौर भट्ट ने अपने भाई राजा प्रदीपशाह को स्थिति की नाजुकता भांपते हुए संधिवार्ता हेतु अली मुहम्मद के पास भेजा।[४५] इन अभियानों के बाद भले ही रूहेले कुमाऊं में शासक बने, किन्तु भौगोलिक परिस्थितियां करवटें ले रही थी, निरन्तर शीत और बर्फीले वातावरण के कारण उनके ज्यादातर सैनिक अब बीमारी और मृत्यु के शिकार होने लगे।

ऐसी परिस्थितियों में दोनों पक्षों के मध्य संधिवार्ता का रास्ता खुला और इसे गैर सैण (गैरमांडा) की संधि का नाम दिया गया।[४६] संधि की शर्तों के अनुसार गढ़वाल नरेश सिरमौर भट्ट को एक लाख ६० हजार रूपए अली मुहम्मद को वार्षिक कर के रूप में अदा करने पड़े।[४७] साथ ही तीन लाख रुपये की नकदी तत्काल गढ़वाल नरेश को देनी पड़ी, जो वास्तव में तो कुमाऊं नरेश कल्याण चन्द से वसूली जानी थी।

कुमाऊं के शासक के रूप में रूहेलों ने शर्त रखी कि राजा कल्याण चन्द को अपदस्थ कर किसी

अन्य नाते-रिश्तेदार को सत्ता सौंपी जाए तथा यदि आगे गढ़वाल नरेश कुमाऊं को कोई मदद करता है तो इसको संधि शर्तों का उल्लंघन माना जाएगा।[४८]

संधि सम्पन्न होने के उपरान्त, रूहेला सरदार रूहेलखण्ड में वापस तो चले जाए, किन्तु अली मुहम्मद खां, अवध के नबाव की ओर से आशंकित होने के कारण कुमाऊं क्षेत्र पर अपना आधिपत्य होने कारण इस क्षेत्र पर अपना अधिपत्य स्थाई रूप से बनाए रखने का पक्षधर था इसीलिए उसने वापसी के बावजूद 'बारखेड़ी' में न केवल अपनी उपस्थिति बनाए रखी, बल्कि इसी मकसद को पूरा करने की गरज से 'रूद्रपुर' और 'काशीपुर' को अपने साम्राज्य में मिला लिया।[४९]

इन पर्वतीय सैन्य अभियानों की सफलता के बाद अली मुहम्मद खां आंवला वापस लौटा, किन्तु अल्मोड़ा से वापसी के दौरान वह वहां बनी अपने वालिद की कब्र पर 'खिराज-व-अकीदत' अदा करने पहुंचा, वहां उसने 'फातेहा' भी पढ़ा।[५०] इन अभियानों में जहां रूहेला को तीन लाख की नकदी, गहने, जेवरात, सोना-चांदी, हाथ लगा। वहीं राजा हरिनन्दन खत्री की पराजय और मौत से सम्पूर्ण 'कठेहर' आधुनिक रूहेलखण्ड क्षेत्र पर उसका अधिपत्य स्थापित हो गया तथा वे इन सैन्य-अभियानों के बाद एक तरह से पर्वतीय क्षेत्र कुमाऊं से पूरी तरह निश्चिन्त से हो गया। किन्तु वे अभी भी दिल्ली मुगल दरबार और अवध के नवाब सफदरजंग से चिन्तित था, क्योंकि दोनों ही रूहेलों के लिए कड़ी राजनैतिक चुनौती के रूप में सामने खड़े हो सकते थे। किन्तु यहां इस ऐतिहासिक तथ्य का भी उल्लेख करना आवश्यक होगा कि गैर सैण की संधि के एक वर्ष बाद ही १७४५ ई. में राजनीतिक परिस्थितियों ने एक बार पुनः करवट बदलीं और अवध के नवाब सफदरजंग ने मौके का लाभ उठाकर मुगल सम्राट मुहम्मद शाह को रूहेलों के विरुद्ध मदद कर इनको कुचलने की सलाह दी।

संभावित खतरे को भांपकर अली मुहम्मद खां ने अपने रूहेला सरकार नजीब खा के नेतृत्व में 'वाराखेड़ी' किले में अपनी सैन्य शक्ति में वृद्धि की साथ ही एक बार पुनः कुमाऊं क्षेत्र की घेराबन्दी के लिए सेनाएं भेजी।[५१] रूहेलों के विरुद्ध इस बार के प्रतिरोध का दायित्व शिवदेव जोशी व उनके अन्य सहयोगियों को सौंपा गया था जिनके सैन्य दल के रूहेलों से डटकर मोर्चा लिया। परिणाम स्वरूप कोटा नामक स्थान पर छावनी बनाए रूहेलों को पीछे हटने के लिए मजबूर होना पड़ा।[५२] भले ही पहले दो कुमाऊं और गढ़वाल के अभियानों में पर्वतीय सेनाओं को सफलता नहीं मिली किन्तु १७४५ के दूसरे अभियान से इस क्षेत्र से रूहेला शक्ति का सर्वथा प्रभाव हुआ जिसकी पृष्ठभूमि में इस क्षेत्र की जलवायु और समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों की प्रमुख भूमिका रही, किन्तु रूहेलों के इन कुमाऊं और गढ़वाल के सैन्य अभियानों ने मध्य हिमालय क्षेत्र के इतिहास की दिशा को निश्चित तौर पर प्रभावित किया जो इसमें पूर्व अभेद्य और अजेय समझे जाते थे।

निष्कर्ष

भारत में जब-जब विदेशी शक्तियों के आगमन की चर्चा होती है तो क्षेत्रीय शक्तियों के रूप में संपूर्ण रुहेलखंड पर अपना अधिपत्य स्थापित करने वाली रुहेला शक्ति इनमें से एक प्रमुख विदेशी शक्ति के रूप में सामने आती है। रोह, रूहेला और रूहेलखंड इन तीन शब्दों में उस रूहेला शक्ति के भारत में

उद्‌भव और पराभव का इतिहास समाहित है, जिसने मध्यकालीन भारत के इतिहास की धारा को मोड़ने का काम किया। वैसे तो अफगानिस्तान से प्रवजन करके यह जाति कठेहर क्षेत्र में आकर बसी थी, किंतु इस वाह्य शक्ति ने अपने विभिन्न सैन्य अभियानों से न केवल रुहेलखंड बल्कि उसके साथ-साथ मध्य हिमालय क्षेत्र में स्थित कुमाऊं और गढ़वाल के सैन्य अभियानों के द्वारा वर्तमान उत्तराखंड राज्य के इतिहास को भी प्रभावित किया है। मगर इन विदेशी शक्तियों को अपनी शक्ति विस्तार के क्रम में स्थानीय शक्तियों का व्यापक विरोध झेलना पड़ा जिनका मूल्यांकन इतिहास में समुचित रूप में नहीं हो सका। भारत में आजीविका की तलाश में आए इन लोगों ने सबसे पहले कठेहर क्षेत्र को अपना ठिकाना बनाया था। इस कठेहर क्षेत्र की सीमाएं दक्षिण पश्चिम में गंगा नदी उत्तर में कुमाऊं के पर्वतीय क्षेत्र तथा इसकी पूर्वी सीमा अवध प्रांत से मिलती थी जिसमें उत्तर प्रदेश का वर्तमान संपूर्ण रोहिलखंड का क्षेत्र भी सम्मिलित था। कठेहर का प्राचीन इतिहास कठेरिया राजपूतों से संबंधित है, जिन्होंने आंवला जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र को अपना गढ़ बनाया था। यहां से वे बदायूं, अवध तथा गंगा घाटी के दोआबा के क्षेत्र पर नियंत्रण रखते थे।

संदर्भ :

१. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, बरेली और १८५७ का विप्लव, रामा पब्लिकेशन, बरेली, २००६, पृ. १

२. गिरिराज नंदन, रूहेलखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति, प्रकाश प्रकाशन, बरेली, २००५, पृ. ५०

३. नज्मुल्गनी खान, अखबार-उस-सनादीद, रजा पुस्तकालय, रामपुर, उ.प्र., १९०४, पृ. २३५

४. ई.टी. एटकिंसन, दा हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स ऑफ द नार्थ प्राविन्सेस ऑफ इण्डिया (भाग-२), गेजेटियर, नटराज पब्लिकेशन, देहरादून, १९७३, पृ. ५८१

५. शिव प्रसाद डबराल, उत्तराखण्ड का इतिहास (भाग-१०), वीरगाथा प्रकाशन, गढ़वाल, देहरादून १९७३, पृ. ५३१

६. वी.एल.वाई ग्रोवर, अल्फा मेहता, आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन, एस.चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, २००४, पृ. ८

७. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, रूहेलखण्ड के संस्थापक नबाव अली मुहम्मद खां, रामा पब्लिकेशन, बरेली, २००८, पृ. ८

८. शेखर वद्योपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक (अनुवाद नरेश नदीम), ओरियंट लोंगमेन, नई दिल्ली २००७, पृ. २१

९. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, बरेली और १८५७ का विप्लव, पृ. ६

१०. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, रूहेलखण्ड के संस्थापक नबाब अली मुहम्मद खां, पृ. ४

११. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, बरेली और १८५७ का विप्लव, पृ. ५

१२. नज्मुल्गनी खान, अखबार-उस-सनादीद, पृ. ६४

१३. वही, पृ. ६४
१४. गिरिराज नन्दन, रूहेलखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति, पृ. ५१
१५. बिलियम इरविन, लेटर मुगल्स (भाग-२), एम.सी. सरकार एण्ड कम्पनी, कलकत्ता, १९७३, पृ. १२१
१६. वही, पृ. १२१
१७. रामसिंह सोर, मध्य हिमालय का अतीत, मल्लिका प्रकाशन, दिल्ली, २००७, पृ. २६४
१८. वही, पृ. २६४
१९. जोगा सिंह होठी एवं दलीप अस्थाना, हाफिज रहमत खान, रामा पब्लिकेशन, बरेली, २००६, पृ. ११
२०. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, बरेली और १८५७ का विप्लव, पृ. ९
२१. शेखर वद्योपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, पृ. २०
२२. वी.एल.वाई. ग्रोवर, अल्फा मेहता, आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन, एस.चांद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, २००४, पृ. २०
२३. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, ओरियन्ट लॉगमेंट, नई दिल्ली, २००७, पृ. २१२
२४. गिरिराज नन्दन, रूहेलखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति, पृ. ५४
२५. जोगा सिंह होठी एवं दलीप अस्थाना, हाफिज रहमत खान, पृ. १८
२६. वही, पृ. १९
२७. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, रूहेलखण्ड के संस्थापक नबाब अली मुहम्मद खां, पृ. १९
२८. जोगा सिंह होठी एवं दलीप अस्थाना, हाफिज रहमत खान, पृ. १८
२९. गिरिराज नंदन, रूहेलखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति, पृ. ५४
३०. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, रूहेलखण्ड के संस्थापक नबाब अली मुहम्मद खां, पृ. ३१
३१. ई.टी. एटकिंसन, दा हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स गेजेटियर ऑफ द नार्थ प्राविन्सेस ऑफ इण्डिया (भाग-२), पृ. ५८७
३२. वही, पृ. ५८२
३३. बद्रीदत्त पाण्डेय, कुमायुं का इतिहास, श्याम प्रकाशन, अल्मोड़ा, १९९०, पृ. २९२-२९३
३४. ई.टी. एटकिंसन, दा हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स गेजेटियर ऑफ द नार्थ प्राविन्सेस ऑफ इण्डिया, (भाग-२), पृ. ५८८
३५. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, रूहेलखण्ड के संस्थापक नबाब अली मुहम्मद खां, पृ. ३३
३६. गिरिराज नंदन, रूहेलखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति, पृ. ५५
३७. ई.टी. एटकिंसन, दा हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स गेजेटियर ऑफ द नार्थ प्राविन्सेस ऑफ इण्डिया,

(भाग-२), पृ. ५८६
३८. ए.एल. श्रीवास्तव, भोरवाह एण्ड हिज सक्सेसर, शिवलाल अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, १९५०, पृ. ११
३९. नज्मुल्गनी खान, अखबार-उस-सनादीद, पृ. १४३-१४४
४०. बद्रीदत्त पाण्डेय, कुमायुं का इतिहास, श्याम प्रकाशन, पृ. ३२७
४१. इलियट एण्ड डाउसन, गुलिस्तान-ए-रहमत, जिल्द ८, आगरा, १९७३, पृ. १८
४२. शिव प्रसाद डबराल, उत्तराखण्ड का इतिहास (भाग-१०), पृ. ३८३
४३. नज्मुल्गनी खान, अखबार-उस-सनादीद, पृ. १४३
४४. वी.डी. एस. नेगी, प्रोस्पेक्टिव ऑन द रोहिला इन विजिन ऑफ कुमायुं, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा, १९९२, पृ. २८
४५. बद्रीदत्त पाण्डेय, कुमायुं का इतिहास, पृ. ३२९-३३०
४६. नज्मुल्गनी खान, अखबार-उस-सनादीद, पृ. १४४
४७. चन्द्रशेखर दुमका व घनश्याम जोशी, उत्तराखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, १९९९, पृ. ८०
४८. राहुल सांकृत्यायन, हिमालय परिचय, लॉ जरनल प्रैस, इलाहाबाद, १९५३, पृ. ९३
४९. ई.टी. एटकिंसन, दा हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स गेजेटियर ऑफ द नार्थ प्राविन्सेस ऑफ इण्डिया (भाग-२), पृ. ५८८
५०. ए.एल. श्रीवास्तव, भोरवाह एण्ड हिज सक्सेसर, शिवलाल अग्रवाल प्रकाशन, पृ. ११३-११४
५१. डॉ. जोगा सिंह होठी, डॉ. रुपाली सोना और डॉ. नवीन गुप्ता, रूहेलखण्ड के संस्थापक नबाब अली मुहम्मद खां, बरेली, २००८, पृ. ३६
५२. शिव प्रसाद डबराल, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग-१०, गढ़वाल, देहरादून १९७३, पृ. ३६८

सहायक आचार्य
इतिहास विभाग, एन.ए.एस.पी.जी कॉलेज मेरठ
उत्तर प्रदेश

Women's participation in National Movement : Role of Socio-religious Reform Movements

Dr. Ankush Bhardwaj

ABSTRACT

The entire story of the freedom movement is replete with the saga of bravery, sacrifice and political sagacity of great men and women of the country. In the long tale of the struggle for freedom with political and social reform activities had their part to play. It may be that some leaders might have emphasized one while others laid stress on the other, but generally the consciousness of their mutual impact on the effort towards independence was present all the time. The reform movement in nineteenth century was hastened by Western impact but its inspiration was indigenous, and it was but a continuation of the earlier reform movements which derived their inspiration from the essence of ancient Indian cultural traditions. Abuses in the religious and social spheres at everytime in the history of India have been sought to be remedied by recourse to the purity of the teaching of Vedas and Upanishads and the great treasure of our cultural heritage. Therefore, in this paper, an attempt has been made to understand the inter-relationship of socio-religious reform movement and struggle for freedom.

Keywords: *Social reforms, Nationalism, Asharam, Society, Struggle, Freedom.*

The passion for all round reform which had animated a host of medieval saint-reformers in India and many centuries earlier had inspired the Buddha and Mahavir to strive for the regeneration of man, manifested itself again in the nineteenth century.[1] The effective interpretation of India by the West, alike on the social and economic plane, may be said to have begun about 1800.[2] And the intellectual awakening in India which was one of its primary result and which in its turn was to produce far-reaching changes in Indian society, became distinctly visible shortly thereafter.[3]

The 19th and 20th centuries witnessed the beginning of many socio-religious reform movements in different parts of India. As part of the national renaissance, movements like Arya Samaj, Brahma Samaj, Prarthana Samaj and Theosophical Society spearheaded the social reformation in the various parts of India. Along with the generation of a national feeling, such movements fought against the evils like sati, infanticide, child marriage and other kinds of discriminations like caste system and untouchability.

Social reform and nationalism were but two facets of the Renaissance that began to convulse Indian life from the beginning of the Nineteenth century. One can broadly agree with "Zacharias" that movements for social reform and political emancipation were closely connected, that it is impossible to understand Indian political aspirations and activities if one divorces them from that nations great new

spiritual urge towards truth, Justice and Love of which the one and the other alike are but outward manifestation. Raja Ram Mohan Roy was a true representative of the spirit of this age.[4]

Raja Ram Mohan Roy, founder of Brahmo Samaj in 1828 at Calcutta stood for the cause of women. He believed in a society which was free from social inequality and oppression. Raja Rammohan Roy was opposed to all sorts of social mal practices. He believed in a society based on fraternity of interdependent individuals, unity and equality. He first made an organized movement against one of the malignant disorders of popular Hinduism, Sati. He was conscious about the property rights of women, which was reflected through his writings "Modern Encroachments on the Ancient Rights of Females according to the Hindu Law of Inheritance". He was well aware of the evil effects of polygamy, Kulinism and practice of selling girls in marriage.[5] As an advocate of equality between men and women, he openly spoke that woman was not a weaker sex and in no way inferior to a man morally and intellectually. He condemned polygamy and wrote against widow burning.[6]

Keshav Chandra Sen was perhaps the most outstanding after Ram Mohan Roy. He started a normal school for girls, an industrial school for boys, the Victorian Institution for women and the Bharat Ashram, a home in which a number of families were gathered together for cultivation of a better home life and for the education of women and children.[7] Sen suggested and wanted to adopt such measures as may tend to establish a pure system of social and domestic economy on the principles of true religion.[8] He further said it is not true that social reformation can be thorough and complete without religious advancement.[9]

Swami Dayanand established Arya Samaj and tried to restore the vedic socio-religious order. Swami Dayanand gave a slogan of "Back to Vedas". According to him, Vedas, being the knowledge imparted by God for the benefit and guidance of mankind, contained germs of knowledge of all kind useful to man in his life, germs of various science and art which we see developed in the world today.[10] They invited both men and women to study the vedas, prohibited child marriage and allowed virgin widows and widowers to remarry.[11] They had their women's Arya Samaj and they did a lot for the education of girls. The Arya Samaj was against caste, child marriage, priestcraft, pilgrimage and self-torture in the name of religion. Arya Samaj stood for Indians and started a revival current of thought which may be called "Indian Nationalism". National reconstruction on National lines was the fundamental cry of the founder and his Samaj.

Similarly, Sivanarayana Paramhansa (a minor reformer) condemned idolatry and opposed caste, deprecated child marriage, advocated female education and declared women to be equal with men.[12] He exhorted people to be equal-sighted to sons and daughters, and to educate them equally.

The Deva Samaj founded by Siva Narayan Agnihotri on 16th February, 1887[13] also devoted itself to social reform. The Samaj had missionaries and also lay-

workers both men and women. They had two High Schools, a number of primary schools, a school for the depressed classes and a training college for mission workers called the Vikashalya or House of Development. A good deal of attention is given to female education.[14] They had a successful boarding school for girls at Ferozepur, teaching up to the matriculation standard. They did a little medical work, had two widow's homes and had held industrial exhibitions.[15]

Vivekanand also wanted social reform to be broad-based on the consent of the masses.[16] According to Swami, weakness was the only sin in the world and so all weakness was to be shunned as sin and death.[17] The Swami whole-heartedly endorsed Manu's dictum, learn good knowledge with all devotion from the lowest caste. Learn the way to freedom, even if it comes from the Pariah, by serving him. If a woman is a jewel, take her in marriage even if she comes from a low family of the lowest caste.[18] Swami Vivekanand established Ramakrishna Mission on 1st May, 1897.[19] According to Swami ji, the tyranny of a minority is the worst tyranny that the world has ever seen. A few men who think certain things are evil will not make nation move. Why doesn't the nation move? First educate the nation, create your legislative body, and then the law will be forthcoming. First create the power, the sanction from which the law will spring. Therefore, even for social reform, the first duty is to educate the people and (for that) you will have to wait till the time comes."[20]

Ishwar Chandra Vidyasagar dealt with widow remarriage and women education. He became the first Secretary of the Hindu Balika Vidyalya that Mr. Bethune founded as the President of the Board of Education which later on developed into the Bethune College, training young ladies in the higher branches of learning. The school had to face great difficulty in securing its first batch of students and parents who sent their daughters to this institution were subjected to persecution and even ex-communication. The establishment of the Hindu Balika Vidyalya in 1849 was however a landmark in the history of women education in India. Vidyasagar, when he was an Inspector of school with jurisdiction over several districts, started a number of girls' school running them at his own expense.[21]

The socio-religious reform movements started in the nineteenth century by liberal reformers and revivalists, made women as the recipient of social change. The issues of women education, abolition of purdah, widow remarriage were raised. The roots of the Indian women's movement go back to the nineteenth century's male social reformers, as discussed above, who took up the issues concerning women and started women's organizations. Women started forming their own organization from the end of the nineteenth century first at the local and then at the national level.

In the years before independence, the two main issues they took up were political rights and reform of personal laws. Women's participation in the freedom struggle broadened the base of the women's movement. Initially women participation was confined to highly educated group but a much wider participation emerged in 1920 with significant changes in the organization of family as well as changing political scenario.

The history of India is rich with the contributions made by women from time to time in various fields. In modern period, particularly since the beginning of the struggle for freedom, a considerable number of women have made remarkable contributions by taking active participation in national movements. The struggle for freedom actually started in the 19th Century. Enough opposition to foreign rule in early years came from the peasants, labours and weaker sections of the society than from the educated bourgeois classes. The deliberate destruction of Indian manufacturers and handicraft aggravated agrarian misery and economic discontentment. The revolt by Rani of Midnapur in 1799, Kittur in 1824, rebellions of Santhals in 1855 and war of independence in 1857 became a symbol of inspiration and sacrifice for the coming generation in India. Begum Hazrat Mahal, Rani Lakshmi Bai and Rani of Ramgarh were instrumental in the revolt.[22]

The participation of women in these earlier years (1872-1905) was hardly noticeable, but there are a few references to some women social reformers like Maharani Tapasvini, Swarn Kumari, Rama Bai Ranade, Francina Sorabji.The year 1897 advance the women movement in India. Two permanent provincial organizations for furthering social reform arose this year. The Bombay Presidency Social Reform Association and the Madras Hindu Social Reform Association. These bodies began to hold annual Provincial Conferences.[23]

Pandita Ramabai in 1889 opened the Sarda Sadan or Home of Learning for Hindu widows in Bombay. Hence, the Hindu Widow's Home Association was organized in Poona in 1896.[24]

Since 1904, an Indian Ladies Conference (Bharat Mahila Parishad) has been held discussing subjects affecting Women's life. In 1910, at seventh Conference held at Allahabad, they passed following Resolutions:[25]

1. That in the opinion of this Conference, the best way of the advancement of the country is female education and the Conference requests all Indians to make arrangements for spreading female education.
2. That in the opinion of this Conference, it is not enough to teach girls reading and writing. They ought to be taught how to manage the household, how to attend a sick person, sewing etc.
3. That in the opinion of this Conference, child marriage is the root of all evils. It is the duty of the well-wishers of the country to remove this evil.
4. That this Conference is of the opinion that it is absolutely necessary to lessen the rigour of the Parda.
5. That this conference thinks that the children should not be made to wear ornaments.
6. That the condition of Hindu widows is pitiable, and in order to save them from many troubles it is necessary to open Widow's Homes where they can be educated.[26]

By the end of the nineteenth century, a few women emerged who formed organizations of their own. The Arya Mahila Samaj founded in 1882 for the general upliftment and enlightenment of women, Bharata Mahila Parishad[27] (a branch of National Social Conference formed in 1887), the Women's Indian Association

(WIA) founded in 1917,[28] the National Council of Women in India (NCWI) founded in 1925 as a branch of International Council of Women,[29] the All India Women's Conference (AIWC) founded in 1927 for legal and Constitutional rights of women, to name a few, were founded in both British India and the Princely States.[30] Women's uplift, philanthropy, social work among poor and destitute women and social reform were central to their work. These later developed into public activities in support of women's democratic rights and contacts with women's groups and movements outside India. Concern for the economic uplift of women was not absent but was not an overriding issue. Women organizations were the first step towards their participation in national movement.[31]

From liberal homes and conservative families, urban centres and rural districts, women- single and married, young and old came forward and joined the struggle against colonial rule. Though their total numbers were small, their involvement was extremely important. Women's participation called into question the British right to rule, legitimised the Indian nationalist movement and won for activist women, the approval of Indian men. Women who were already organised under various organizations, mass supported the movement to rid the country of its foreign rule. Even the male members of the society approved their political participation. The number of women who played some role in this movement far exceeded the expectations. The nature of their work actually influenced and altered their perspective about their potential contribution to national development.[32]

In 1889, four years after the Indian National Congress was founded, ten women attended its meeting. In 1890, Swarna kumari Ghosal, a woman novelist, and Kadambini Ganguly, one of the India's first female medical doctors, attended as delegates. From this time on, women attended every meeting of the INC, sometimes as delegates, but more often as observers. A chorus of 56 girls from all regions of India performed the song 'Hindustani' in 1901. Two Gujrati girls sang its translated version at the opening session of Indian National Congress in 1901.[33]

The partition of Bengal in 1905 galvanised and transformed women's participation in the national movement. The mobilisation of women was attempted through the publication of pamphlets, public meetings held exclusively for women and new nationalist associations (in contrast to the elite associations) which emerged during the swadeshi period. Mass struggle militancy, armed struggle and political agitations mark this period. Women of different classes were involved in growing numbers in such activities in different parts of India, in both rural and urban areas. The Swadeshi movement drew women out of their homes and called for their active participation in the struggle for Swaraj in Bengal. Women for the part time galvanized into political action when 500 of them held a meeting at Janikandi village in the district of Murshidabad to protest against the partition "Vande Matram, "hail the mother" was a rallying cry among the people.[34] At the time of the partition women joined the protest by boycotting foreign goods and clothes and buying only swadeshi goods i.e. goods produced in Bengal province only. Other women also took a vow to participate in the swadeshi movement.In Bengal lakhs of women led

by Basanti, Urmila, Suniti Devi, wife, sister, niece of veteran lawyer, freedom fighter C.R.Das, joined hartals, protest marches, picketing foreign goods/liquor shops, courting arrest, singing patriotic songs, the bonfires of foreign goods reflected their commitment to nationalism, inspiring women across India.[35]

But it was Mohan Das Karamchand Gandhi, who assessed, skilfully harnessed women's capabilities, potential to serve familial, community, nationalist projects to bring socio-political changes locally as well as nationally.[36] Women's struggle entered a new phase with the arrival of Mahatma Gandhi on the Indian political scene. Drawing from diverse sources including the Hindu scriptures and literature, Gandhi venerated women as Shakti, Lakshmi; cited examples of Sita, Durga, Draupadi, Damyanti, Savitiri, powerful, noble figures tempered by virtue; these resisted unfairness in human relations, chose suffering, death, over compromising feminine cause, honour.[37] Mohandas Karamchand Gandhi returned to India in 1915. Soon after his introduction to Bombay Society, he met women who belonged to women's social reform organizations. He was invited to talk to one of these groups, composed of middle-class women, about the poverty of the masses. He told and encouraged women to be leaders like their ancestresses like Sita, and Draupadi.[38] His speech deeply influenced the women.

With the end of World War I and renewed demands for self-rule, the government passed the Rowlatt Acts at the beginning of 1919 prohibiting public protest and suspending civil liberties. This was when Gandhi began to develop a program for women. On April 6, the day marked for a general strike throughout India, he called all the women by addressing "ladies of all classes and communities" and asked them to join the Satyagraha movement.[39] Though this movement was withdrawn because of massacre in Amritsar, but it was already clear that women had joined the fight against the British. Gandhi urged them to take the swadeshi, vow to give up foreign goods and spin every day.

Gandhi encouraged women in various ways. He touched the hearts of both Hindu and Muslim women. He explained to the women that there was a place for them in the movement, then he expressed his faith in their courage. It was possible to help the movement without leaving home or neglecting the family. He convinced them that every act of them will be counted.[40]

Gandhi launched the Non Co-operation Movement in 1920 and gave a special role to women. Women interested in politics held meetings to show their support. At one of the several meetings which Sarojini Naidu addressed, women decided to form their own political organization, Rashtriya Stree Sangha.[41]

Times started to change. Women from all the provinces of British India stepped forward in response to Gandhi's call. Gandhi's appeal went beyond respectable women to women marginalised by middle class society. He had a reputation as a political leader who believed women counted and had faith in their capacity to help the nation and themselves. As Gandhi travelled and spoke, he urged women to boycott foreign clothes, spin, and join in public defiance of British laws. At the same time, women's organizations were petitioning the British government

for the franchise. Gandhi responded that he knew all about the disadvantages of Indian women but the problem was not with the law or religion but with the man's lust. Real change would come when both men and women began to view their relationships differently. He advocated celibacy instead of legal change.[42]

Sarla devi Chaudharani, Mathulakshmi Reddy, Amrit Kaur, and many other women who followed Gandhi however did not abandon the franchise issue. They were impressed with his empathy towards women but unwilling to give up their work on civil rights. Women followed Gandhi for different reasons. Rajkumari Amrit Kaur,[43] a member of the Ahluwalia royal family of Kapurthala state, served as Gandhi's secretary for sixteen years.[44] She admired Gandhi for his fight for justice. Other women followed him because their menfolk accepted his leadership.

Gandhi launched Civil Disobedience Movement in 1930 which brought large numbers of women into public life. Women's participation in the civil disobedience movement of 1930-1932 differed qualitatively and quantitatively from the early 1920's and won them a place in history. Bombay's women's picketing and demonstrations from 1930-1932 received more press attention than women's activities in any other part of the country. The number of women marching was in the thousands and their pickets were organised and effective. That Bombay's women took the lead seemed natural given the cosmopolitan nature of the city, its transportation system, and the presence of Parsees and Christians, both communities supportive of female education.[45]

Demonstrations and picketing continued in Bombay until 1931. During this time women proved their effectiveness in agitation politics. The Desh Sevikas organised a number of demonstrations that grabbed headlines and inspired women all over India.

In Bengal, which was the heart of the revolutionary struggle, The Mahila Rashtria Sangha founded by Latika Ghosh, mobilised women for political work. This organisation wanted to achieve swaraj and improve women's status. Latika Ghosh wrote articles calling on women to wake up and take a good look at their country, and told them that they were the Shaktis (power) of the nation.Calcutta women formed the Nari Satyagraha Samiti in 1929 in response to the Congress call for women to be ready to serve the nation.[46] Urmila Devi, one of the first women arrested for political activities, was its president. This group had fifteen to twenty women who were ready to picket and risk arrest. They all belonged to professional families and were educated.[47]

Most of the women who became involved with revolutionary groups at this time were students. But they had very little physical autonomy and were socialised to behave modestly. Most of them joined secret societies after they had worked with women's organisations and with Congress.

Whereas previously women had supported revolutionaries by keeping house for them, spreading propaganda, collecting funds, hiding and transporting weapons, and even making explosives, now they were directly involved in revolutionary acts. Santi and Suniti,[48] two school girls from Comilla, shot magistrate

Stevens to death in 1931. Later they were prisoned.[49] Bina Das, the young college student from Calcutta who fired a pistol at Governor Jackson, is the most famous of the revolutionary women.[50]

In North India also women from various parts joined public demonstrations and shocked a public unused to seeing respectable women in the streets without veils. Leadership came from a very few families for example Nehrus and Zutshis, and most demonstrators came from schools and colleges. Unlike other parts of the country, women's organisations were neither the training grounds nor recruiting stations for politically active women.

In Allahabad, women from Nehru's family were the important leaders. They made public speeches and went door to door urging women to join the movement. In Lahore, Lado Rani Zutshi, the wife of Motilal Nehru's nephew and three of his daughters, Man-mohini, Shayama, and Janak Kumari led the movement. When Bhagat Singh and his comrades were sentenced to death, Man-mohini decided to post women pickets at three colleges at Lahore: Government College, Law College and Forman Christian College.[51] It was a wildly successful demonstration as male students absented themselves from classes to cheer the young women.

While thousands of women joined the freedom movement in response to Gandhi's call, there were others who could not accept his creed of non-violence and joined revolutionary or terrorist groups. Their hatred of the British was intense and their plan was to make attempts on European lives as widely as possible. They believed in individual acts of heroism not in building a mass movement.

Women participated in the freedom movement because they were inspired by patriotism and wanted to see the end of foreign rule. It is debatable as to how far this participation liberated them. Women's participation in the freedom movement did not lead to a separate autonomous women's movement since it was part of the anti-colonial movement. While women who picketed shops, marched in processions or went to jail or threw bombs did not question male leadership or patriarchal values, it did generate in them a sense of self-confidence and realization of their own strength. Many returned to their homes but others continued their activities in the public arena. It transformed the lives of many young widows such as Durgabai Deshmukh[52] and Kamala Devi Chattopadhyaya.[53]

The participation of women in the freedom movement also shaped the movement for women's rights. Most important it legitimised their claim to a place in the governance of India. Women won respect for their courage and the large numbers in which they participated in the freedom struggle and at the Karachi session of the Indian National Congress in 1930, the resolution on Fundamental Rights gave equal rights to women.

The women in the movement were educated and mentored by men but they were not mere puppets of the anglophile elite or even of nationalists. Nor were they a monolithic group. Some had been educated in English medium convent schools others in pathshalas. Some were from princely families, others from ordinary middle-class homes. Some of them were strong personalities with views of their own.

In view of what has been discussed it can be concluded that Nationalism and the social reform movement went side by side, each reacting upon and influencing the nature and character of the other. As the character of our nationalism underwent transformation, so the social reform movement also took a different turn.

Religious societies founded and successfully managed a number of organization including education for women, orphanages to widow women, hospitals, schools and many acts were passed for the welfare of women. Reformers made an attempt to reorder society in the area of social behaviour, custom, structure or control. Indian Nationalism, born under and growing as a reaction against foreign dominations, aimed at the total representation of Indian life-religious, social, political and economic. Dayanand, Vivekanand and Annie Besant and Gandhi wanted social reforms to proceed on national lines.

Gandhi stood for the total emancipation of women, marriage reforms, eradication of the evil of drink, removal of untouchability and ideals of social services. He passionately desired the utmost freedom for women. Gandhi believed that if women come out of their homes and participate in the national movement, they would stand for their own rights in the future.

References:

1. Singh Sitaram, 1968, "Nationalism and Social Reforms in India, Ranjit Printers, New Delhi, p 1.
2. Farquhar,J.N., 1929, Modern Religious Movement in India, Macmillan and Co. Limited,London, p 1
3. Ibid, p 2
4. Singh Sitaram, 1968, op.cit., p 4
5. Ibid, p 2
6. Ibid., p 3
7. Farquhar,J.N., 1929, op.cit., p 49
8. Sen, Amiya P, 2003, Social and Religious reform, the Hindus of British India, Oxford University Press, p 72
9. Ibid., p 73.
10. Pandey Dhanpati, 1972, "The Arya Samaj and Indian Nationalism from 1875–1920", S. Chand & Company (Pvt. Ltd), New Delhi, p 36.
11. Singh Sitaram, 1968, op.cit., p 53.
12. Ibid, p 53
13. Singh Sitaram, 1968, op.cit., p 53
14. Farquhar, J.N., 1929, op.cit., p 179
15. Ibid., 180.
16. Singh Sitaram, 1968, op.cit., p 57
17. Ibid., p 60
18. Ibid., p 61
19. Jones, Kenneth W, 1994, "Socio-Religious Reform Movements in British India, Cambridge Press, Sydney, p 44.
20. Sen, Amiya P, 2003, op.cit., p 68.
21. Singh Sitaram, 1968, op.cit., p 6
22. Basu Aparna, 1976, "The Role of Women in the Indian struggle for freedom: Indian Women from Purdah to Modernity, ed. B.R. Nanda, Vikas

Publications, New Delhi, p 17-23
23. Farquhar, J.N., 1929, op.cit., p 94
24. Ibid., 403
25. Ibid., 394
26. Ibid., 395
27. Forbes Geraldine, "The New Cambridge History of India": Women in Modern India, 2004, Vol. IV, Cambridge University Press, p 66
28. Ibid., p 72
29. Ibid., p 75
30. Ibid., p 78
31. Ibid., p 82-83
32. Ibid., 121
33. Ibid., p 122
34. Chopra, P.N, "Women in the Indian Freedom Struggle", New Delhi: Minisry of Education, p 7
35. Forbes Geraldine, 2004, op.cit., p 123
36. Basu Aparna, 1976, op.cit. p.20.
37. M.K.Gandhi, 'Duty of Women,' in Collected Works of Mahatma Gandhi, vol xviii, pp. 57-8, also pp.391-95; 'Untouchability, Women and Swarajya,' Indian Social Reformer, 37, March 26, 1927, p.465.
38. Gandhi, M.K., 1954, "Women and Social Injustice", Navjivan Publishing House, pp 4-5.
39. Forbes Geraldine, 2004, op.cit., p 124.
40. Ibid., p 125.
41. Bala Raj, 1999, "The Legal and Political Status of Women in India", New Delhi, Mohit Publications, p 250
42. Gandhi, M. K., 1921, "The Position of Women", Young India, pp 128-129.
43. Kaur Manmohan, 1960, "Role of women in freedom movement (1857-1947)", Sterling Publications, p 217-219.
44. Malhotra S.L., 1979, "From Civil Disobedience to Quit India, Gandhi and the Freedom Movement in Punjab and Haryana- 1932-1942, Publication Bureau,PU Chd, p 121.
45. Bipin Chandra, 1989, "India's Struggle for Independence", Penguin Book, New Delhi, p 276.
46. Forbes Geraldine, 2004, op.cit., p 136.
47. Bipin Chandra, op.cit., p 280.
48. Kaur Manmohan, 1960, op.cit., p 187-188.
49. Akhil Chandra Nandy, 1973, "Girls in India's Freedom Struggle", p 1-2.
50. Forbes Geraldine, 2004, op.cit., p 138
51. Bipin Chandra, 1989, op.cit., p 285.
52. Kaur Manmohan, 1960, op.cit., p 192-193
53. Ibid., p 178-181.

Assistant Professor,
Deptt. Of History, ICDEOL,
Himachal Pradesh University, Shimla

व्यक्ति विशेष

वजीर रामसिंह पठानिया का साहसिक एवं संघर्षमय जीवन

राजेन्द्र सिंह सम्बयाल

शोध सारांश

अंग्रेजों के दमनचक्र के खिलाफ अगर १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम का आन्दोलन हुआ तो उसकी पहली चिंगारी वजीर रामसिंह पठानिया के रूप में फूटी थी। विधर्मी अंग्रेजी हुकूमत की ज्यादतियों के खिलाफ पहली तलवार वजीर रामसिंह पठानिया की उठी। जिन्होंने नूरपुर रियासत को अंग्रेजों से स्वतन्त्र करवा लिया था। किशोरवय उम्र में वीर रामसिंह पठानिया ने यह दिखा दिया कि अकेले चलकर भी विरोध की ऐसी चिंगारी पैदा की जा सकती है जो अन्याय की हुकूमत को घुटने के बल पर खड़ा कर दे। उन्होंने छोटी सी उम्र में ही जिस धीरता-वीरता का परिचय दिया वह आज भी लाखों-करोड़ों युवाओं को देशभक्ति की भावना से भर देती है। दुर्भाग्य यह है कि हिमाचल के इस वीर सपूत की शौर्य गाथा से आज की नई पीढ़ी अपरिचित है। रामसिंह पठानिया ने अंग्रेजों को युद्ध की चुनौती दी। शाहपुर कण्डी के किले पर अधिकार के उपरान्त डल्ले की धार में बड़ी वीरता से लड़ा था।

संकेत शब्द : *स्वतन्त्रता संग्राम, शाहपुर कंडी, नूरपुर, हुकूमत, चन्द्रवंशी।*

१८५७ के स्वतन्त्रता समर से पूर्व ब्रिटिश सत्ता को ललकारने वाले वीर योद्धा बजीर रामसिंह पठानिया की शौर्य गाथा को हिमाचल, पंजाब और जम्मू-कश्मीर में सुना जा सकता है। १८-१९वीं शताब्दी का भारत अनेक विघटनकारी सत्ता संघर्ष का सामना कर रहा था। देशी रियासतों के आपसी संघर्ष से घातक ब्रिटिश सत्ता छोटे-बड़े राजाओं के साथ साथ छोटी-छोटी जागीरदारों को भी उनकी जागीरों से मुक्त कर रहे थे। ऐसे समय में हिमाचल प्रदेश के नूरपुर के राजा व उसके वजीर रामसिंह पठानिया की अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की ललकार व अंग्रेजी सत्ता को सीधी चुनौती थी। ऐसे शूरवीर यौद्धा का जीवन और इतिहास शताब्दियों तक राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा के लिए बजीर राम सिंह पठानिया का स्मरण होता रहेगा।

वजीर रामसिंह पठानिया

वंश परम्परा

वजीर राम सिंह पठानिया का जन्म १० अप्रैल १८२४ ई. को जिला कांगडा तहसील नूरपुर गांव वासा वजीरां में हुआ था।[१] इनका सम्बन्ध चन्द्रवंशी क्षत्रियों के तोमर वंश से रहा है। दिल्ली के सम्राट अंनगपाल के छोटे भाई जेठपाल ने पैथान (वर्तमान पठानकोट) के शासक कुज्जबक खां को हरा कर पैथान पर विजय प्राप्त करके ११वीं शताब्दी में पठानिया राजवंश की नींव डाली थी तथा पठानकोट में

६००x६०० फुट के वर्गाकार सुदृढ़ किले का निर्माण करवाया था।[२] वर्तमान में इस स्थान को शिमला पहाड़ी के नाम से जाना जाता है। इस राजवंश के राजा नागपाल (१३९७-१४३८) के सुपुत्र रामपाल की संतान चक्की नदी के किनारे बसे हाड़ा गांव में रहने के कारण हडयाल पठानिया कहलाए।[३] इसी वंश के शाम सिंह पठानिया नूरपुर रियासत के राजा के पास वजीर के औहदे पर वफादारी और नीति से काम करते थे। वही गुण और संस्कार शाम सिंह के पुत्र राम सिंह पर भी पड़े। राम सिंह की मां इन्दौरी देवी जो स्यालकोट वर्तमान में पाकिस्तान में शकरगढ़ तहसील के वारामंगा गांव के हरचन्द राजपूतों की बेटी थी, जिन्हें लोग हरचन्दी नाम से भी पुकारे थे। शाम सिंह पठानिया नूरपुर के नजदीक पहाड़ी के आंचल में आकर रहने लगे थे, जिसे वर्तमान में वासा वजीरां (राजस्व रिकार्ड के अनुसार वासा हडयाला) के नाम से जाना जाता है। राम सिंह पठानिया का कुछ ही समय यहां व्यतीत हुआ था।

सिख सत्ता का विस्तार

महाराजा रणजीत सिंह की विस्तारवादी नीति ने पहाड़ी रियासतों को अपने कब्जे में कर लिया था और उनसे लगान व मालगुजारी लेना प्रारम्भ कर दिया। कांगडा के कटोच राजा और नूरपुर के राजा वीर सिंह ने कर देने से मना कर दिया। महाराजा रणजीत सिंह ने अपने साम्राज्य के सभी सरदारों व लाहौर दरबार को टैक्स देने वाले सभी पहाड़ी रियासतों के राजाओं को १८१५ई. में सियालकोट में विचार-विमर्श हेतु आने के निर्देश दिए। जसवां के राजा उमेद सिंह व नूरपुर के राजा वीर सिंह सियालकोट नहीं गए, जिस कारण महाराजा रणजीत सिंह ने दोनों पर भारी ४०००० हजार जुर्माना लगाया।[४] जिसका स्वाभिमानी राजा वीर सिंह ने यथाशक्ति भरपूर विरोध किया। पंजाब के शासक महाराजा रणजीत सिंह की विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षा और प्रचण्ड सैनिक शक्ति के बल पर १० फरवरी १८१६ ई. को सिक्ख सेना ने नूरपुर किले पर अधिकार कर लिया।[५] अतः नूरपुर के राजा वीर सिंह पठानियां को अपने ससुराल चम्बा रियासत में शरण लेने के लिए विवश होना पड़ा। वहां भी उन्हें सिख सत्ता ने चैन से न रहने दिया और उन्हें अन्ततः बागल रियासत की राजधानी अर्की के राजा के पास रहने के लिए विवश होना पड़ा। वहां से ही वह अपने वफादारों से सम्पर्क साध कर राज्य को पुनः प्राप्त करने के प्रयास करते रहे। १० साल बाद सन् १८२६ ई. में उन्होंने अपने विश्वश्नीय दरबारियों एवं कर्मचारियों के सहयोग से नूरपुर किले की घेरावन्दी कर दी।[६]

महाराजा रणजीत सिंह को आशंका थी कि नूरपुर रियासत के वजीर शाम सिंह के सहयोग से ही राजा वीर सिंह ने नूरपुर किले की घेरावन्दी की होगी। उन्होंने शाम सिंह की जागीर जब्त कर ली और लौहार दरबार में बुला लिया ताकि वह भविष्य में सिक्खों का विरोध न कर सके। कुछ समय उपरान्त उसके अल्पायु बेटे राम सिंह को काश्मीर के तत्कालीन गवर्नर दीवान किरपा राम (दिसम्बर १८२७ ई. से फरवरी १८३१ ई.) के संरक्षण में भेज दिया ताकि वजीर शाम सिंह पर नियंत्रण रखा जा सके और वह भविष्य में भी अपने राजा के प्रति सहानुभूति रखते हुए कहीं सिक्खों के विरूद्ध कोई चुनौती खड़ी न कर दें। गौर करने वाली बात तो यह कि चार साल के बच्चे राम सिंह को अपने माता-पिता से दूर रखकर परिवार और बालक राम सिंह को अकल्पनीय यातना सहने के लिए मजबूर कर दिया गया था। पर, दोनों ही बाप बेटे ने उस नाजुक समय को सम्भाला और शाम सिंह महाराजा रणजीत सिंह का मन जीतने में

सफल हुए। जब राम सिंह को काश्मीर से वापिस बुला कर लाहौर दरबार के सेनापति अतर सिंह सन्धेवालिया के संरक्षण में रखने के आदेश दिया गया व वजीर शाम सिंह पर विश्वास जताते हुए उन्हें ३५०० रुपये की वार्षिक जागीर प्रदान कर दी। इस प्रकार बाल्यकाल से ही राम सिंह पठानिया अपने परिवारिक सदस्यों से मीलों दूर काश्मीर घाटी में रहकर लगभग ११ वर्ष की आयु में पुनः अपने परिवार के सदस्यों के पास लाहौर दरबार तो पहुंच गए लेकिन उनकी परवरिश सैनिक परिवेश में होने के कारण उन्होंने सैन्य कौशल, राजनैतिक दाव पेच एवं कठिन व विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य रखने की कला में महारत हासिल कर ली। रामसिंह पठानिया युवा होने के साथ-साथ राजनीतिक संघर्षों और सैनिक ताकत के महत्त्व को समझने लगे थे। सिख सत्ता भी आन्तरिक संघर्षों से जूझ रही थी जिसका सारा खेल रामसिंह के सामने चल रहा था। उनका ध्यान अपने राजा वीर सिंह को और नूरपुर रियासत को स्वतन्त्र करवाना था। इसके फलस्वरूप सत्ता संघर्ष से अपने लिए शक्ति और नीति से मार्ग निकालना सीखा। इसकी झलक उनके आगामी संघर्षों में प्रदर्शित होती है।

२७ जून १८३९ ई. को महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के उपरान्त लाहौर दरबार में अव्यवस्था फैल गई।[५] महाराजा रणजीत सिंह के सात बेटे खडग सिंह, शेर सिंह, तारा सिंह, कश्मीरा सिंह, पिशोरा सिंह, मुल्तान सिंह और दलीप सिंह उत्तराधिकार को लेकर आपस में उलझ गए। सत्ता की छीना झपटी में फौजी दस्ते वागी होकर मनमानी पर उतर आए। लाहौर दरबार की केन्द्रीय सत्ता के कमजोर पड़ते ही अंग्रेजों ने अपनी विस्तारवादी नीति को पंजाब में लागू करना शुरू कर दिया। १५ सितम्बर, १८४३ ई. को अजीत सिंह संधेवालिया ने पंजाब के शासक शेर सिंह की गोली मार कर हत्या कर दी और राजमहल पर कब्जा कर लिया।[६] जल्दी ही दरबारी सेना ने सेनापति संधेवालिया भाईयों से किला तथा राजमहल मुक्त करवा लिया। इसका सरदार अजीत सिंह सन्धेवालिया दरबार की सेना के हाथों मारा गया जबकि अतर सिंह संधेवालिया को अंग्रजों ने राजनीतिक शरण दे दी। महाराजा रणजीत सिंह के सबसे छोटे बेटे दलीप सिंह जिसकी आयु केवल ७ वर्ष थी को अंग्रेजों ने महाराजा घोषित किया। उनके दो सौतेले भाईयों पिशोरा सिंह और कश्मीरा सिंह ने भी राजगद्दी पर अपना दावा जताना शुरू कर दिया। महाराजा दलीप सिंह की माता जिन्दाकौर ने राजमाता की हैसियत से अपने भाई जवाहर सिंह को नावालिग महाराजा का संरक्षक एवं सलाहकार नियुक्त कर मंत्रीपरिषद् में शामिल कर लिया।[८]

अतर सिंह संधेवालिया महाराजा रणजीत सिंह का सम्बन्धी था। वह पुनः लाहौर दरबार के क्षेत्र में भाई वीर सिंह के नौरंगावाद स्थित कैम्प में पहुंच गया। उसने अंग्रेजों से वादा कर रखा था कि अगर वह पंजाब में अपने अभियान में सफल रहा तो मालगुजारी से इकट्ठी की गई राशि से रूपये के छः आने अंग्रजों को देगा। कुछ समय बाद लाहौर दरबार के सैनिकों ने राजकुमार कश्मीरा सिंह, भाई वीर सिंह और अतर सिंह संधेवालिया को भी मौत के घाट उतार दिया। १३ दिसम्बर १८४५ ई. को गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने लाहौर दरवार के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।[१०] इस युद्ध को प्रथम सिक्ख-एंग्लोयुद्ध के नाम से जाना जाता है। ब्रिटिश सरकार ने रोपड़, लाडवा और अल्लोवाल रियासतों को जब्त करके नाभा रियासत का १/४ भाग अपने अधिकार में ले लिया। इस क्षेत्र को अंग्रेजों का साथ देने वाले सरदारों में बांट दिया गया और जागीरदारों को केवल मालगुजारी उगाहने का कार्य ही सौंपा गया।[११]

९ मार्च १८४६ ई. को लाहौर में हुई सन्धि की धारा ३ व ४ के अन्तर्गत सतलुज एवं रावी नदी के मध्य क्षेत्र पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का स्वामित्व स्थापित हो गया। १६ मार्च १८४६ ई. को अमृतसर की संधि के अन्तर्गत रावी एवं सिंधु नदी के मध्य पड़ने वाले भू-भाग पर महाराजा गुलाब सिंह का अधिकार हो गया।[९२] इस प्रकार महाराजा रणजीत सिंह का साम्राज्य तीन लारेंस भाईयों और महाराजा गुलाब सिंह में विभक्त हो गया। रेजीडेंट के रूप में हेनरी लारेंस लाहौर दरबार से नाभा का प्रशासन चलाने लगा। उसके भाई जान लारेंस कमीश्नर के रूप में जालन्धर दोआव पर तथा जार्ज लारेंस पेशावर से हजारा और डेराजाट क्षेत्र पर शासन करने लगे। जबकि रावी और सिंधु नदी के मध्य के भू-भाग की सभी पहाड़ी रियासतों को महाराजा गुलाब सिंह ने ७५ लाख रुपये का भुगतान करके अंग्रजों से ले लिया जिसके फलस्वरूप 'जम्मू एवं कश्मीर' नामक नए राज्य का उदय हुआ। अंग्रजों द्वारा नवनिर्मित ट्रॉस सतलुज स्टेट के शासन हेतु सहायक कमीश्नर एडवर्ड लेक को प्रभारी व जी.सी.बार्नस को जिलाधिकारी नियुक्त किया।[९३]

राजा वीर सिंह द्वारा नूरपुर किले की घेरावन्दी तथा उनकी अकाल मृत्यु

सन् १८४५ ई. में जब अंग्रेज फौज सतलुज की तरफ बढ़ रही थी तो राजा वीर सिंह ने उचित अवसर जानकर अपने पुराने वफादारों से सम्पर्क स्थापित कर अपने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त करने की योजना को कार्यरूप देना शुरू कर दिया।[९४] लाहौर दरबार में सरदार अतर सिंह सन्धेवालिया की हत्या उपरान्त महारानी जिंदा कौर ने वजीर शाम सिंह की जागीर जब्त करके उन्हें हिरासत में लेने के आदेश दे दिए क्योंकि वजीर शाम सिंह एवं उनके पुत्र राम सिंह पठानिया अतर सिंह सन्धेवालिया के नजदीकी माने जाते थे। हालांकि कुछ समय पश्चात् लाहौर दरबार द्वारा वजीर शाम सिंह को १००० रुपये वार्षिक जागीर प्रदान कर दी गई। कांगडा के सिक्ख सूबेदार देसा सिंह मजीठिया के पुत्र सरदार रणजोध सिंह ने सिक्खों के विरूद्ध पनप रहे असंतोष को कुचलने के लिए वजीर शाम सिंह व उनके बेटे राम सिंह पठानिया को अपने पैतृक क्षेत्र में जाकर १००० स्थानीय युवकों की सेना एकत्रित करने का निर्देश दिया।[९५] इन परिस्थितियों में वे असमंजस में पड़ गए क्योंकि भविष्य में राजनैतिक हालात क्या करवट लेंगे यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा था। नूरपुर क्षेत्र में पहुंच कर वह राजा वीर सिंह के सम्पर्क में आ गए। उनके हृदय में स्वामी भक्ति एवं अपने राजा के प्रति सहानुभूति पुनः जागृत हो उठी। अतः उन्होंने अपने राजा वीर सिंह का सहयोग करने का मन में दृढ़ निश्चय कर लिया। राजा वीर सिंह ने वजीर शाम सिंह, उनके बेटे राम सिंह तथा अन्य वफादार साथियों की सहायता से नूरपुर रियासत के लखनपुर, शाहपुर कण्डी, धार तथा मस्तगढ़ नामक किलों को सिक्ख सेना से मुक्त करवाने के उपरान्त नूरपुर किले की घेरावन्दी भी कर ली। दुर्भाग्यवश राजा वीर सिंह की अकाल मृत्यु के कारण इस अभियान को स्थगित करना पड़ा। कुछ समय के उपरान्त अंग्रेजी सेना के लैफ्टिनेंट लेक ने नूरपुर किले को सिक्ख सेना से खाली करवा कर उस पर अधिकार कर लिया था।

वीर सिंह ने अपनी प्रजा की सहायता से शाहपुर किले को घेर लिया। भाग्य उसका साथ नहीं दिया और वही अपने पैतृक दुर्ग के सामने उसने अन्तिम सांस ली।[९६] किले के भीतर राजमहलों में ब्रिटिश सेना का अधिकार हो चुका था। नूरपुर रियासत के उत्तराधिकारी राजकुमार जसवन्त सिंह जोकि चम्बा

रियासत के राजा चढ़त सिंह के सरंक्षण में परवरिश पा रहा था और जिसकी उम्र उस समय १० वर्ष थी को वजीर शाम सिंह की अगुवाई में रियासत के पुराने वफादार पूर्व दरबारियों एवं अधिकारियों ने गहन विचार विमर्श उपरान्त चम्बा से नूरपुर लाकर खुशीनगर नामक अस्थाई आवास में ठहरा दिया। अंग्रेज शासकों ने राजकुमार जसवन्त सिंह को नूरपुर रियासत का उत्तराधिकारी मानने से इन्कार कर दिया था। अंग्रेजों का तर्क था कि उन्होंने यह क्षेत्र ९ मार्च १८४६ ई. को लाहौर दरबार के साथ हुई सन्धि के अर्न्तगत प्राप्त किया है।

राम सिंह पठानिया का प्रतिकार

९ मार्च १८४६ ई. की लाहौर सन्धि के उपरान्त वजीर शाम सिंह के पुत्र राम सिंह पठानिया काफी समय तक राजकुमार जसवन्त सिंह को नूरपुर रियासत के राजा के रूप में मान्यता दिलवाने हेतु प्रयासरत रहे। व्यास नदी के किनारे बसे काठगढ़ नामक स्थान पर उन्होंने राजकुमार जसवन्त सिंह की मुलाकात ट्रांस सतलुज स्टेट के सहायक कमीश्नर लैफ्टिनेंट लेक से करवाई। लै. लेक ने राम सिंह को परामर्श दिया कि वह अपना पक्ष जालन्धर डिवीजन के कमीश्नर जान् लारेंस के समक्ष कांगड़ा में रखें।[१७] जब राम सिंह पठानिया राजकुमार के साथ जान लारेंस से मिले तो उन्होंने राजकुमार को सशर्त पेंशन प्रदान करने की पेशकश की। परन्तु राम सिंह पठानिया राजकुमार को नूरपुर रियासत का राजा घोषित करने की पैरवी करते रहे। जान् लारेंस ने उन्हें शिमला आने का परामर्श दिया ताकि अन्तिम निर्णय पर पहुंचा जा सके। शिमला में जान् लारेंस ने राजकुमार जसवन्त सिंह को २०,००० वार्षिक पेंशन इस शर्त के साथ प्रदान करने की पेशकश की कि राजकुमार नूरपुर रियासत के बाहर सतलुज नदी के पार निवास करें।[१८] राम सिंह पठानिया ने गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग के कांगड़ा प्रवास के समय ज्वालामुखी पहुँच कर राजकुमार का पक्ष उनके समक्ष रखने का प्रयत्न किया। परन्तु उन्हें गवर्नर जनरल से मिलने का समय न मिल सका। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और लै. लेक की सलाह से राजकुमार को लेकर होशियारपुर पहुँच गए। यहाँ जान् लारेंस ने उनकी मुलाकात लार्ड हार्डिंग से करवा दी। यहाँ भी उनका प्रयास सफल न हो सका क्योंकि पुनः सशर्त पेंशन की पेशकश ही दोहराई गई। इस निर्णय से जब नूरपुर रियासत के वफादारों को अवगत करवाया गया तो सभी ने एकमत से उपरोक्त अपमानजनक निर्णय को मानने से इन्कार कर दिया। बार-बार के प्रयासों के बावजूद जब सफलता नहीं मिली तो राम सिंह पठानिया को एहसास हो गया कि ब्रिटिश शासक पहाड़ी रियासतों को अधिकार में लेने की योजना के अंतर्गत गुप्त षडयंत्र रचने में सरगर्म हैं। सम्भवतः अंग्रजों ने रियासत के पूर्व कर्मचारियों को अपने पक्ष में करने हेतु प्रलोभनों की पेशकश शुरू कर दी थी जिसमें वे आंशिक रूप में सफल भी हुए। वित्तीय कठिनाईयों के कारण राजवंश के सदस्यों एवं राजकुमार जसवन्त सिंह का धैर्य टूट रहा था। अतः एक पूर्व वजीर सुचेत सिंह की सलाह पर अंग्रेजों ने राजकुमार को नूरपुर रियासत में रहने की अनुमति तो दे दी परन्तु पेंशन की राशि २०,००० रुपये से कम करके केवल ५००० रुपये वार्षिक इस शर्त के साथ प्रदान करने की पेशकश कर दी कि भविष्य में राजकुमार जसवन्त सिंह वजीर शाम सिंह और उनके पुत्र राम सिंह पठानिया से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखेंगे। उपरोक्त घटनाओं से आहत होकर स्वाभिमानी राम सिंह पठानिया ने अंग्रेज

शासकों के षडयंत्रों एवं कुटिल चालों को विफल करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

वजीर राम सिंह पठानिया का अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष

राष्ट्रभक्त स्वाभिमानी राम सिंह ने पठानिया राजवंश की परम्परा अनुसार अन्याय को सहने की बजाए विपरीत परिस्थितियों का सामना करने का संकल्प लेकर अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए सब प्रकार की सुख-सुविधाओं को त्याग कर अपना सम्पूर्ण जीवन ही समर्पित कर दिया। युवा राम सिंह पठानिया ने स्थानीय एवं रावी नदी के पार जसरोटा रियासत में गुप्त रूप से समान विचारों वाले युवकों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें संगठित किया तथा १५ अगस्त १८४८ ई. को शाहपुर कंडी के किले पर धावा बोल कर अपने अधिकार में ले लिया। अगले दिन १६ अगस्त १८४८ ई. को उन्होंने किले पर नूरपुर रियासत का केसरिया झंडा फहराकर राजकुमार जसवन्त सिंह का राजतिलक करके नूरपुर रियासत का राजा घोषित कर दिया तथा स्वयं को उनका वजीर घोषित करके ब्रिटिश शासकों को सीधी चुनौती दे डाली।[१६] वजीर राम सिंह पठानिया के इस कदम से अंग्रेज तिलमिला उठे। उन्होंने पूर्व वजीर सुचेत सिंह को राजकुमार का संरक्षक नियुक्त करके राजकुमार जसवन्त सिंह को ५००० रुपये वार्षिक एवं उनकी माता को २००० रूपये वार्षिक पैंशन स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया।

अब वजीर राम सिंह पठानिया ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी गतिविधियां तेज कर दी तो दूसरी ओर ब्रिटिश शासकों ने उन्हें कुचलने के भरसक प्रयास प्रारम्भ कर दिए। वजीर राम सिंह पठानिया ने अंग्रेजों के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध प्रणाली को अपनाया। वजीर रामसिंह पठानिया के पास न ही तो स्थाई सैनिक थे और न ही कोई बड़े साधन थे। इसके उपरान्त भी उन्होंने सन् १८४६ ई. से १८४९ ई. तक स्थानीय युवाओं को संगठित कर अपने पैतृक गाँव वासा, मऊ के जंगल, कुम्मणी दा पैल, त्रिहाड़ी का किला तथा शाहपुर कंडी को अपनी कर्मभूमि बनाकर लगभग ३ वर्षों तक सशस्त्र संघर्ष करके ब्रिटिश हुकूमत की नाक में दम कर दिया।

अंग्रेजों ने सितम्बर १८४८ ई. को मेजर हडसन के नेतृत्व में प्रथम सिक्ख इन्फैंटरी के ८०० सैनिकों द्वारा वजीर राम सिंह पठानिया और उनके सहयोगियों पर आक्रमण कर दिया। प्रथम सिक्ख इन्फैंटरी के सैनिकों का डटकर मुकाबला करते हुए वजीर राम सिंह पठानिया ने ब्रिटिश सेना के नायक सूबा सिंह, सिपाही नानू खान, जुम्मा खान तथा ओमर खान को गम्भीर रूप से घायल कर दिया तथा मेजर हड़सन को चकमा देकर अपने साथियों सहित सुरक्षित वहाँ से निकल गये।[२०]

वजीर राम सिंह पठानिया द्वारा डल्ले की धार में शिविर स्थापित करना

वजीर राम सिंह पठानिया यह जानते थे कि ब्रिटिश सेना से मुकाबला करने के लिए उन्हें और ज्यादा सहयोग की जरूरत पड़ेगी। अतः अपनी छापामार गतिविधियों को कुछ समय विराम देकर आगामी संघर्ष की रूपरेखा को अन्तिम रूप देने के उद्देश्य से वजीर राम सिंह ने पड़ोसी रियासतों के शासकों के साथ गुप्तरूप से सम्पर्क साधना शुरू कर दिया। उन्होंने काँगड़ा के राजा प्रमोद चन्द, दतारपुर के राजा जगत चन्द, गुलेर के राजा शमशेर सिंह, जसवां के राजा उमेद सिंह तथा ऊना के सन्त विक्रम सिंह वेदी आदि से अनुरोध किया कि अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता हेतु संगठित होकर ब्रिटिश शासकों के षड़यंत्रों को विफल करने की कार्य योजना में सहयोग करें। क्षेत्रीय परिस्थितियों एवं सीमित साधनों के कारण जब

पड़ोसी राजाओं ने असमर्थता दिखाई। अब वजीर राम सिंह ने अपनी रियासत के रसूखदार व्यक्तियों से गुहार लगाई कि वे अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में उनकी सहायता करें। उन्होंने शाहपुर हिल सर्कल के कोतवाल फिन्ना सिंह, दास कोतवाल, जंगी बड़वाल, नंहगी धनौटिया, तारा सिंह, ध्यान सिंह जरयाल, सुचेत सिंह व अमर सिंह मन्हास आदि को सामूहिक रूप से सशस्त्र संघर्ष में हिस्सा लेने का प्रस्ताव भेजा। परन्तु अधिकतर लोगों ने अपनी असमर्थता जताई। इन हालातों में भी वजीर राम सिंह पठानिया ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की राह पर अडिग रहे। अंग्रेज शासकों द्वारा उन्हें संघर्ष की राह छोड़ने के लिए कई प्रकार के लालच देकर अपने पक्ष में करने की कोशिश की गई। यहाँ तक कि अंग्रेजों ने उन्हें शाहपुर, कोटला तथा काँगड़ा के किले जागीर के रूप में प्रदान करने की पेशकश की परन्तु सफलता न मिलने पर अंग्रेजों ने अपने सम्पर्क सूत्रों के माध्यम से उनके माता-पिता, सगे सम्बन्धियों और मित्रों के द्वारा उन पर सशस्त्र संघर्ष को त्यागने का दबाव बनाया। परन्तु वजीर राम सिंह ने मंगल सिंह मन्हास, हरचन्द राजपूतों व अपने मामा बहादुर सिंह आदि को अपने विचारों एवं कार्ययोजना से सहमत करने में सफलता हासिल कर ली। तत्पश्चात् लाहौर दरबार के अपने पुराने सम्पर्कों के माध्यम से महारानी जिंदाकौर, भाई महाराज सिंह, गुजरात के राजा शेर सिंह अटारीवाला तथा हजारा के गवर्नर सरदार चतर सिंह अटारीवाला के समक्ष उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की अपनी योजना का प्रारूप रखा। जिसके फलस्वरूप राजा शेर सिंह सैनिक सहायता प्रदान करने के लिए सहमत हो गए। उन्होंने हथियारबन्द सिक्ख सैनिकों के दो दस्ते जिनमें ५०० सैनिक शामिल थे के अतिरिक्त १०० घुड़सवार सैनिक वजीर राम सिंह पठानिया की सहायता हेतु भेजे। इससे उत्साहित होकर वजीर राम सिंह पठानिया सिक्ख सैनिकों एवं अपने सहयोगियों सहित पुनः शाहपुर कंडी क्षेत्र में आ धमके। अबकी बार सैनिक ताकत के साथ उन्होंने शिवालिक पहाड़ियों में मुकेश्वर के घने जंगलों के मध्य सामरिक महत्त्व के चौवारा नामक स्थान पर अपना सैनिक शिविर स्थापित करके अंग्रेज़ी सेना को छापामार युद्ध से आतंकित करना शुरू कर दिया। उन्होंने ममून नामक अंग्रेजी सैनिक चौकी को तहस-नहस करके त्रियाड़ी के किले से अपनी गतिविधियां जारी रखीं।

वजीर राम सिंह के युद्ध कौशल, संगठन संचालन एवं राष्ट्रभक्ति की भावना ने ब्रिटिश शासकों को सोचने पर विवश कर दिया कि पहाड़ी रियासतों पर शासन करना इतना आसान नहीं जितना उन्होंने सोच रखा था। वजीर राम सिंह पठानिया के सशस्त्र संघर्ष से उत्साहित होकर पड़ोसी पहाड़ी रियासतों की जनता का विदेशी सत्ता के विरुद्ध संगठित होने के समाचार कलकत्ता स्थित ईस्ट इंडिया कम्पनी के मुख्यालय तक पहुँच गए। अतः ब्रिटिश शासकों ने वजीर राम सिंह पठानिया को नियंत्रित करने एवं उनके द्वारा शुरू किए सशस्त्र संघर्ष को कुलचने हेतु उच्च स्तर पर कार्य योजना बनाने पर विचार विमर्श शुरू कर दिया।

अंग्रेजों ने जालन्धर फील्ड फोर्स तथा पंजाब डिवीजन के कमांडिग आफिसर जनरल ब्रिगेडियर व्हीलर को वजीर राम सिंह पठानिया के सैनिक शिविर पर आक्रमण करने के आदेश दिए।[२२] मेजर हड़सन के नेतृत्व में २ पलटनों को शीघ्र कूच करने का निर्देश प्राप्त होने पर ५ जनवरी १८४९ ई. को लैफ्टिनैंट जान पील २ कम्पनियों सहित होशियारपुर से कूच करके ७ जनवरी को दसूहा में जनरल व्हीलर की सेना में सम्मलित हो गए और माधोपुर पहुँच कर चार दिन वहीं रुके रहे। ब्रिगेडियर जनरल व्हीलर ने अपना

अस्थाई कैम्प पठानकोट में स्थापित किया था। कमीश्नर ट्रांस सतलुज स्टेट जान् लारेंस भी इस सैनिक अभियान की निगरानी हेतु पठानकोट पहुँच गये। यहाँ १६ घुड़सवार सेना के कमांडिग आफिसर मेजर बटलर, लैफ्टिनैंट स्मिथ एवं डगलस स्थानीय अधिकारियों सहित वजीर राम सिंह पठानिया के विरुद्ध सैनिक अभियान शुरू करने में जुट गए थे। १६ जनवरी १८४६ ई. को अंग्रेजी सेना ने माधोपुर से सुबह सवेरे राम सिंह पठानिया के शिविर की ओर कूच किया तथा प्रातः ७ बजे के लगभग दोनों ओर के सैनिकों का आमना-सामना हो गया और भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में लगभग डेढ़ दर्जन राजपूत युवक अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता हेतु वीरगति को प्राप्त हुए। दूसरी ओर ब्रिटिश सेना के सैकण्ड-इन-कमाण्ड जॉन पील (ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रॉबर्ट पील का भतीजा) घुड़सवार सेना के कारनैट क्रिस्टी, हवलदार हुसैन खान, नायक राम सिंह, सिपाही गुलाब सिंह, खड़ग सिंह और कन्हैया सिंह गम्भीर रूप से घायल हो गए तथा जमादार राम किशन सिंह, नायक भूर सिंह, सिपाही मान सिंह, काहन सिंह और बदन सिंह वजीर राम सिंह पठानिया के हाथों मारे गए। अतः १७ जनवरी १८४६ ई. को लैफ्टिनैंट जान् पील घावों की ताब न सहते हुए मर गया।[२२] जिसके परिणाम स्वरूप ब्रिटिश शासक अत्यधिक दबाव में आ गए। उन्होंने साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपना कर वजीर राम सिंह को जीवित या मृत लाने वाले को २००० रुपये इनाम की घोषणा कर दी। उन्होंने भारी नाकेबन्दी करके उनके सम्भावित ठिकानों पर छापेमारी शुरू कर दी। ब्रिटिश सेना ने चक्की नदी के किनारे कुम्मणी दा पैल नामक स्थान पर भी सैनिक शिविर स्थापित किया हुआ था ताकि वजीर राम सिंह पठानिया को पैतृक गाँव वासा जाने से रोका जा सके। परन्तु युद्ध कौशल में पारंगत वजीर राम सिंह अंग्रेजों की आखों में धूल झोंक कर अपने सहयोगियों सहित रावी नदी को पार कर जम्मू-कश्मीर राज्य की सीमा में चले गए। इससे हताश होकर ब्रिटिश शासकों ने वासा में उनके घर को आग लगा दी तथा उनके परिवार को प्रताड़ित किया। जब वजीर राम सिंह पठानिया उनकी पकड़ में न आए तो अंग्रेजों ने उनके सम्बन्धियों तथा मित्रों को लालच एवं घूस देकर अपने पक्ष में करने की चेष्टा की ताकि उनका कोई सुराग मिल सके।

वजीर राम सिंह पठानिया की हिरासत

ब्रिटिश सेना की घेराबन्दी से निकलकर वजीर राम सिंह पठानिया रावी नदी के पार सुरक्षित पहुँच कर अगामी कार्ययोजना की रूप रेखा तैयार कर रहे थे, तो राजा शेर सिंह के कैम्प से आए सिक्ख सैनिकों ने अगामी संघर्ष में सहयोग करने पर अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी। इन हालात में उन्होंने सिक्ख सैनिकों को वापिस रसूल लौट जाने का परामर्श दिया। इसके उपरान्त उन्होंने अपने अभियान को कुछ समय के लिए स्थगित करके अपने सभी सहयोगियों को अपने घरों को चले जाने की सलाह देकर स्वयं साधु वेश में ब्रिटिश सेना की गतिविधियों की टोह लेनी शुरू कर दी। इसी दौरान उनके विश्वस्त मित्र पहाड़ चन्द (कांगड़ा)[२३] जो कि उनका खाना भी बनाता था, घर वापसी के समय गुप्तचरों के द्वारा पहचान लिए जाने पर ब्रिटिश सैनिकों ने पकड़ लिया। अतः ब्रिटिश शासकों ने उसको पैसे का लालच देकर एवं भय दिखा कर अपने पक्ष में करके वजीर राम सिंह पठानिया के रावी पार होने की सूचना प्राप्त कर ली। फरवरी, १६४६ ई. को ब्रिटिश सेना ने सूचना पाकर गुप्तचरों का जाल बिछा कर जसरोटा रियासत के ध्योन्थली नामक गाँव में पूजा करते हुए निहत्थे शूरवीर राम सिंह पठानिया को हिरासत में लेने का प्रयास किया तो उन्होंने ब्रिटिश सैनिकों को ललकार कर कहा कि वह आत्म-समर्पण नहीं करेंगे, यदि

आप में नैतिकता का अंश मात्र भी है तो मुझे हथियार देकर मेरा सामना करने की हिम्मत दिखाओ। परन्तु ब्रिटिश सैनिक उन पर हँसते हुए जैसे ही हिरासत में लेने के लिए उनकी ओर बढ़े तो वजीर राम सिंह पठानिया ने घायल शेर की तरह हाथ में पकड़े पूजा के लोटे (कमण्डल) से ऐसा प्रहार किया कि दो अंग्रेज सैनिक मौके पर ही स्वर्ग सिधार गए तथा कई अन्य गम्भीर रूप से घायल हो गए। अन्ततः वजीर राम सिंह पठानिया को हिरासत में ले लिया गया।

वजीर राम सिंह पठानिया पर मुकद्दमें की शुरूआत

कंडी क्षेत्र में वजीर राम सिंह पठानिया की आम जनता में लोकप्रियता के मद्देनज़र अंग्रेज सैनिकों द्वारा उन्हें हिरासत में लेकर सुखपाल (पालकी) में बैठा कर नूरपुर शहर लाया गया। जब इसकी भनक उनके परिवारिक सदस्यों को लगी तो उनके छोटे भाई गोपाल सिंह उनसे मिलने के लिए पहुँच गए, जबकि बासा और नूरपुर शहर के मार्ग में पड़ते 'वाल़ो दा टियाला' नामक स्थान पर उनके पिता वजीर शाम सिंह अपने शूरवीर योद्धा बेटे की एक झलक पाने के लिए प्रतीक्षा करने लगे। बेटे को अंग्रेजों की हिरासत में देखकर पिता की आँखों में आँसू आ गए। स्थानीय लोकगाथा में साहसी योद्धा वजीर राम सिंह पठानिया ने पिता को ढांढस बधाते हुए बताया गया है –

करम लिखिया सो मैं पाया बापू।
मेरे मिसराई ने दगा कमाया बापू।
जिन्दीयाँ लैंदा कौन मेरा ना बापू।
मरदा दे बोल रहंदे मरदां नाल बापू।
लड़दे ने माईया दे लाल बापू।

सम्भवतः यह पिता पुत्र की अन्तिम मुलाकात थी क्योंकि नूरपुर किले से ले जाकर वजीर राम सिंह पठानिया को काँगड़ा के किले में नजरबन्द कर दिया गया। २१ अप्रैल १८४९ में धर्मशाला के डिस्ट्रीक मैजिस्ट्रेट जी.सी.वारेन की अदालत में उन्हें मृत्युदंड की सजा सुना दी गई। लेकिन बोर्ड ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन पंजाब के हस्तक्षेप से गर्वनर जनरल लार्ड डल्हौजी ने कमीश्नर ट्रांस सतलुज स्टेट डी.एच. मैकलोड की सिफारिश पर उनकी सजा मृत्युदंड की बजाए आजीवन कारावास में बदल दी जिसकी पुष्टि गर्वनर जनरल के कार्यालय पत्र संख्या १९६९ दिनांक ११ अक्तूबर १८४९ ई. से होती है।[२४]

वीर शिरोमणि वजीर राम सिंह पठानिया की शहादत

आजीवन कारावास की सजा भुगतने के लिए उन्हें रंगून की भार्टावायन प्रोविस की मौलमियन नामक जेल ले जाया गया। यहाँ पर कई वर्षों तक अमानवीय यातनाएं सहते हुए ११ नवम्बर १८५६ ई. के दिन अपनी मातृभूमि से हजारों मील दूर इस संसार को अलविदा कहते हुए उन्होंने शहादत का जाम पिया था।[२५]

वजीर रामसिंह पठानिया की शौर्य गाथा

नूरपुर रियासत के अवदाल जट्टू, धम्मन और बिल्लू द्वारा गाई गई वजीर राम सिंह पठानिया की शौर्य गाथा को तत्कालीन असिस्टेंट कमीश्नर कुल्लू जे.एफ. मिच्चिल ने लिखित रूप दिया था।[२५]

वार

शाम सिंह दे घर रामसिंह जम्मिया, जम्मिया कोई बलकार राजा।
जिन्नीं जम्मदें लई तलवार राजा, कोई किल्ला पठानिया, जोर लड़िया।।
कोई बेटा बजीर दा, खूब लड़िया, डलले दिया धारा डफ्फले बजदे।
कुम्मणी बजन तंबूर राजा, कोई किल्ला पठानिया, खूब लड़िया,।।

कोई बेटा वजीर दा, जोर लड़िया, बुक्कां-बुक्कां दारू जे बंडदा।
टोकरुआं बंडदा तीर राजा, ओए! चंडी तेरी शमशीर राजा।।
कोई किल्ला पठानिया, खूब लड़िया, कोई बेटा वजीर दा, खूब लड़िया।
मेकी लड़ना दे गोरियां नाल़ राजा, मैं तां लड़ना फरंगियां नाल़ राजा।।
गोरे कडणें देसतें बाहर राजा, कोई ऐसा पठानिया, जोर लड़िया।
कोई बेटा वजीर दा, खूब लड़िया, लिखी परवाने राजियां की भेजदा।।
राजियां दित्ता जवाब राजा, तुसां करने राजियो राज राजा।
असां रखणी कुले दी लाज राजा, कोई ऐसा पठानिया, खूब लड़िया।।
खूब लड़िया-खूब लड़िया, कोई बेटा वजीर दा, खूब लड़िया।
पैह्लैं तां खर्चा राजियां मत्रियां, पिछे ते दित्ता जबाव राजा।।
कोई बेटा वजीर दा खूब लड़िया, कोई किल्ला पठानिया जोर लड़िया।
तूं जे लड़ाई विच कुम्मणी दे कीती ऐ, लऊए दे वगी गए नाल़ राजा।।
कोई किल्ला पठानिया, जोर लड़िया, कोई बेटा वजीर दा, खूब लड़िया।
इक्की फट्टें अंग्रेज चार मारे न, ओथे मारिया जाहून पील राजा।।
ओथे हारिया व्हीलर साहब राजा, तू लिया ऐ पूरा हिसाब राजा।
कोई किल्ला पठानिया जोर लड़िया, कोई बेटा वजीर दा खूब लड़िया।।

प्रतिवर्ष स्थानीय निवासियों द्वारा पठानकोट जिले के धार ब्लाक में डल्ले की धार गाँव में हर वर्ष १६ अगस्त को वजीर राम सिंह पठानिया द्वारा प्राप्त की गई विजय और राजतिलक समारोह की याद में मेले का आयोजन किया जाता है। स्थानीय लोगों में आज भी वजीर राम सिंह के हौसलें और स्वाभिमान को आज जनता में जीवित रखने के लिए उसी स्थान पर बड़े मेले का आयोजन किया जाता है।[२६]

निष्कर्ष

पठानिया की वीरता और उनकी तलवार का खौफ अंग्रेजों के सिर पर पहुंचकर बोलता था। इस महान सपूत की शौर्य गाथा आज भी इस क्षेत्र में बड़े गर्व के साथ गायी जाती है। वीर रामसिंह पठानिया की वीरगति को याद किया जाना आवश्यक हो गया है। उनका स्मरण युवाओं में ऊर्जा के नव-स्फुरण पैदा कर सकती है। अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के प्रति देश प्रेम की भावना से बलिदान देने के कारण ही पूरे भारतवर्ष में वह नींव तैयार हो गई, जिसके फलस्वरूप सन् १८५७ की सशस्त्र क्रान्ति का उद्घोष हुआ था। वीर शिरोमणि वजीर राम सिंह पठानिया के महान त्याग, संघर्ष और बलिदान ने स्वतंत्रता के दीवानों को वह रास्ता दिखाया जिस पर चलकर मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए कई क्रान्तिवीरों ने अपना बलिदान देकर विदेशी हकूमत को उखाड़ फैंकने का साहस दिखाया था। इसी बलिदान के फलस्वरूप वीर शिरोमणि को प्रथम स्वतन्त्रता सेनानी एवं सशस्त्र क्रान्ति का जननायक कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ।

संदर्भ :

१. पंडित दिवान चन्द प्रभाकर, सिद्ध पीठ हाडा मन्दिर का इतिहास का सचित्र इतिहास, मोहतमिम मन्दिर हाडा, वि.सं. २०६० पृ. ६३
२. बी.आर.कपूर, पठानिया राजवंश का इतिहास, नाग मन्दिर जठेरे पठानिया कमेटी नागबाड़ी, नूरपुर, कांगड़ा, २०१४, पृ. ४१
३. वही, पृ. ५४

४. महेन्द्र सिंह रंधावा, कांगड़ा, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९७०, पृ. ३८
५. बी.आर. कपूर, पठानिया राजवंश का इतिहास, पृ. १३०
६. Punjab Gazetteer, 1914, P. 42
७. खुशवन्त सिंह, सिक्खों का इतिहास, (अनुवाद : उषा महाजन) भाग-२, किताबघर प्रकाशन दिल्ली, २००९ पृ. ५
८. वही, पृ. २६
९. वही, पृ. २८,
१०. वही, पृ. ४६
११. वही, पृ. ५४
१२. वही, पृ. ५७
१३. बी.आर. कपूर, पठानिया राजवंश का इतिहास, पृ. १४४
१४. Punjab Gazetteer, 1914, P. 42
१५. बी.आर. कपूर, पठानिया राजवंश का इतिहास, पृ. १३५
१६. डॉ. वी.एल. कपूर, हिमाचल : इतिहास और परम्परा, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, १९९७, पृ. ७०-७१
१७. Himachal Pradesh And outside Powers, Shodhganga, P. 70
१८. Ibid, P. 72
१९. महेन्द्र सिंह रणधावा, कांगड़ा, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९७०, पृ. ३९
२०. Anonymous, History of the first Sikh Infantry 1846-1886, Vol.-1, thacker spink Anoco, Calcutta, 1887, P. 10, 11
२१. बी.आर. कपूर, पठानिया राजवंश का इतिहास, पृ. १५५
२२. Anonymous, History of the first Sikh Infantry 1846-1886, P. 16 -18
२३. डॉ. गौतम व्यथित, कांगड़ा : इतिहास, संस्कृति एवं विकास, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, १९८३, पृ. १५
२४. बी.आर. कपूर, पठानिया राजवंश का इतिहास, पृ. १६०
२५. वही, पृ. १६०
२६. महेन्द्र सिंह रणधावा, कांगड़ा, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९७०, पृ. ३६६

वार्ड-न.२, नूरपुर,
जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

गांव का इतिहास

देवता महाराज डकरेई व पुजारली गांव का इतिहास

डॉ. ओमप्रकाश शर्मा

शोध सारांश

हिमाचल प्रदेश में शिमला जिले की तहसील चौपाल के अन्तर्गत बम्टा पंचायत का पुजारली एक ऐतिहासिक गांव है। यहां देवता महाराज डकरेई का भव्य मन्दिर विराजमान है। यह मन्दिर काष्ठ-कुणी पहाड़ी शैली में निर्मित है। पुजारली वस्तुतः एक बहुत बड़ा गांव नहीं है। यहां देवता पुजारी, कारदार, ढाकी (तूरी) व सेवादार वंश बसे हैं। देवता महाराज का अपना शासन तन्त्र है। इसके अन्तर्गत पुजारली, शंगडोली, ममवी, जगराह, डंडकांल्डी, बूड़च, भजरोठ, रूपाड़ी-बडौला, भिंऊटाड़ी, धोबटाड़ी व भाबर गांव आते हैं। इन गांव में देवता महाराज के जागरा, देऊठन व शावणिअ आदि उत्सव आयोजित होते हैं। इस लेख में देवता महाराज का इतिहास, पुजारली व अन्य शासन तंत्र के गांव का संक्षिप्त परिचय प्रदान किया जा रहा है।

संकेत शब्द : *काष्ठ–कुणी शैली, महाराज डकरेई, शासन तन्त्र, उत्सव।*

१. भौगोलिक स्वरूप

पुजारली गांव छत्तरधार की सुरम्य चोटी के आंचल में बसा है। यह बम्टा रेंज का महत्त्वपूर्ण गांव है। इसके पूर्व में थरोच रेंज का कांचुवा टिब्बा, पोड़न टिब्बा तथा पजौऊर आरण्य, पश्चिमोत्तर दिशा में चौपाल रेंज के मड़ावग, कुजवी, माटल गांव के ऊपर स्थित सुणीपांटी, चुडथा, भेखी एवं नाऊण के टिब्बे स्थित हैं। दक्षिण में लाणी-बम्टा की छोटी-छोटी घाटियां विद्यमान हैं। पूर्व दिशा में रियासती काल में जुब्बल और थरोच रियासतों की सीमा को विभाजित करने वाली नारटी नदी आज भी कलकल बहती है। इसके पूर्व में पोड़न, दक्षिण पूर्व में पौड़िया, रानवा और बूड़च, दक्षिण में रूपाड़ी, भिंऊटाड़ी, भजरोठ, घुरला, कशाह, बम्टा आदि गांव विद्यमान हैं। पुजारली गांव के निकट ही डंडकाल्डी, जगराह, शंगडोली और ममवी गांव स्थित हैं। खड़ापत्थर से गिरिगंगा, कूपड़ और छत्तरधार पैदल मार्ग से इस गांव की दूरी लगभग ५० किलोमीटर है। यह रियासत जुब्बल को जोड़ने वाला पुराना मार्ग है। चौपाल तहसील के मुख्यालय से यह गांव २० किलोमीटर की दूरी पर है तथा बम्टा तक बस मार्ग से जुड़ा है। बम्टा से मंमवी और जगराह तक छोटे वाहनों की सुविधा भी उपलब्ध है। बम्टा पंचायत के अन्तर्गत पुजारली गांव में देवता महाराज डकरेई का भव्य मन्दिर स्थित है। देवता महाराज के मन्दिर का इस क्षेत्र में विशेष महत्त्व है। इस मन्दिर की स्थापत्य एवं शिल्प व इतिहास अतीव प्राचीनतम है।

२. स्थापत्य एवं शिल्प

वास्तु, शिल्प एवं स्थापत्यकला की दृष्टि से भी यह मन्दिर अनुपम है। यह काष्ठ-कुणी पहाड़ी शैली में निर्मित एक भव्य मन्दिर है। इसमें काष्ठ और प्रस्तर का प्रयोग किया गया है। यह मंदिर पाँच

पुरियों में निर्मित है तथा इसका छत शिखर शैली में पत्थरों से आच्छादित है। वर्तमान में इसी शैली में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया है। गोरखा युद्ध तथा सुणी-पांटी में आयोजित की गई जातर में खूंदों के परस्पर युद्ध इस मन्दिर के निर्माण के काल की ओर संकेत करते हैं। संभवतः खश युग में कभी इसका निर्माण किया गया होगा। निश्चित काल को निर्धारित करना कठिन है। मन्दिर परिसर में एक जल की बावड़ी, एक जलाअरी अर्थात् यज्ञशाला (जिसे देवल कहा जाता है) और एक सराय विद्यमान है। जलाअरी में एक यज्ञ कुण्ड है जहां श्रावण मास में देवता की पालकी 'हुम' अर्थात् यज्ञ के लिए ले जाई जाती है। इस मन्दिर का यहां अलग से यज्ञकुण्ड विद्यमान है। पुजारियों के लिए अवासीय सुविधा भी विद्यमान है। मन्दिर परिसर में ही नरसिंह देवता का चौंअरा तथा देवल़ के निकट ६४ योगिनियों की मूर्तियां और छोटे-छोटे शिवलिंग भी विद्यमान हैं। मन्दिर की यह पुरातात्त्विक सामग्री है।

मन्दिर की चौथी पुरी में देवता महाराज की पूज स्थापित है। इस पूज में बोठा, चालदा के रूप में मूर्तियों का विभाजन है। बोठा की अष्टधातु की मूर्ति केवल भ्रांशी और जातर देवोत्सवों में ही बाहर निकलती है। बोठा शिवरूप है। शेष मूर्तियाँ जागरा तथा शवणिअ उत्सव पर मन्दिर से बाहर पालकी में निकाली जाती है। इन में विष्णु, चार देवियां, ब्रह्मा तथा गणेश आदि की मूर्तियाँ अपना भव्य स्वरूप बिखेरती है। यह मन्दिर खगोल विद्या का भी केन्द्र रहा है। बौमाईक और भजरोठी वंशजों के सांचों में इस विद्या की पृष्ठभूमि निबद्ध है। यहां के पुजारी वंश के पास ऐसे कई सांचे आज भी उपलब्ध हैं जिसमें खगोलीय ग्रहों की गणना का विज्ञान विद्यमान है।

३. इतिहास

देवदार, कायल, रई तोष आदि वृक्षों से घिरा देवता महाराज डकरेई का धाम अपनी मनोरम छटा बिखेरे हुए है। यहां पर डकरेई महाराज का जो मन्दिर विद्यमान है, वह प्राचीन है। इसका अपना कालक्रमिक इतिहास है। इस मन्दिर में सर्वप्रथम जिस देवता को स्थापित किया गया था, वह 'शणेशर' के नाम से जाना जाता था। शणेशर देवता का पहला मन्दिर पुजारली ग्राम के निकट देवल नामक स्थान पर स्थापित था। आज भी यहां तीन बावड़ियां और मन्दिर के अवशेष विद्यमान हैं। परवर्तीकाल में यह मन्दिर पुजारली में निर्मित किया गया।

कहते हैं कि बहुत पहले चौअटा, घागना, डीम, शड़ाह, सुणी और धरनाह नामक स्थानों में चैटाल, घगनाल, डमाल, शड़ाल, धैछाल़, सैहटाण, सुणोऊ और धरणोऊ ये सात खूंद निवास करते थे। पूर्व में इन खूंदों की अपनी-अपनी देवियां (जागा अथवा ठौड़) और देवमन्दिर थे। बारह वर्ष बाद ये खूंद अपने देवताओं की पालकियां देवोत्सव 'जातर' में ले जाते थे। बहुत पहले इसी प्रकार का देवोत्सव जातर सुणोऊ खूंद ने अपने क्षेत्र सूणी-पांटी में आयोजित किया। इसमें चार पालकियां सम्मिलित हुई थी। चारों खूंद अपने-अपने देवताओं की पालकियां जातर में ले गए। इन चारों खूँदों की पालकियों के साथ इस उत्सव में सैटाण और डमाल आदि अट्ठारह खूँद भी सम्मिलित हुए थे।

सूणी में यह देवोत्सव 'शुकासौर' स्थान पर आयोजित किया जा रहा था। सभी खूंद अपने-अपने दलों के साथ सज-धज कर नाच रहे थे। दूर-दूर से लोग इस उत्सव को देखने पहुँचे हुए थे। झिकनीपुल के निकट बढारा नामक स्थान से वहां का ठाकुर भी उस उत्सव को देखने पहुँचा हुआ था।

सूणी के मौअता समाल की बढारा के ठाकुर के साथ पुरानी दुश्मनी थी। वास्तव में समाल की छह बहुओं के साथ पहले कभी बढारा के ठाकुर ने उस समय मजाक किया था, जब वे वहां स्थित अट्ठारह बावड़ियों के पास पानी भरने गई हुई थी। समाल ने उस समय अपनी बहुओं के साथ किए गए मज़ाक को देख लिया था।

जातर में आए ठाकुर से समाल ने अपना पुराना बदला लेने का मन बनाया। वह हाथ में शस्त्र लेकर सीधे ठाकुर पर झपट पड़ा। ठाकुर का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। इससे वहां उपस्थित खूंद आपस में ही भिड़ गए। देखते ही देखते खूंदों के सिर कट कर गिरने लगे। पालकियों पर भी प्रहार होने लगे। लहू से मिट्टी लाल हो गई। सबसे अधिक नुकसान घगनाल, चैटाल और धरणोऊ खूदों को हुआ क्योंकि अधिकतर शक्तिशाली पुरुष इन्हीं के कटे थे। देवोत्सव में खून की धाराएं बह निकली। सुणोऊ खूंद के कुछ लोग शेष बचे जो बाद में सिरमौर चले गए। इसी प्रकार सैटाण के शेष बचे वंशजों में से कुछ सिरमौर (सैणधार) तथा कुछ जौंसार-बावर चले गए।

इलाके के शेष बचे कुछ लोगों ने शुकासौर से चारों पालकियों की मूर्तियों को पुजारली लाया। मन्दिर उस समय पुजारली के निकट देवल़ के पास था। इस मन्दिर में चारों खूंदों के देवताओं को प्रतिष्ठित किया गया। उस समय वह देवता शणेशर के नाम से ही प्रसिद्ध था। इसी दौरान डमाल खूंद भी शंगड़ोली में अपनी स्थापनाएं स्थापित कर चुका था। इस खूंद ने भी अपना देवता खलाड़ा पुजारली मन्दिर में प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार वह भी देवमन्दिर में देवता की स्तुति में संलग्न हुआ।

शणेशर देवता के मन्दिर में परवर्ती काल में 'धरमडू' देवता की मूर्ति भी सम्मिलित हुई। इस देवता के सम्मिलित होने का भी अपना एक इतिहास है। धरमडू देवता के 'पांजड़े' में इसके रोचक तथ्य विद्यमान हैं। कहते हैं कि थल्डाकोट (रोहडू और गढ़वाल की सीमा के पास का गांव) में भिंचू तथा भिखू आदि तीन भाई रहते थे। इनका आपस में ज़मीन-ज़ायदाद के कारण झगड़ा हो गया। भिंचू को जब ज़ायदाद का समुचित हिस्सा नहीं मिला तो उसने मन्दिर से धरमडू देवता की सुन्दर मूर्ति उठा ली तथा वह वहां से चल पड़ा। भिखू नामक दूसरे भाई ने भी भिंचू के साथ जाने का ही निर्णय लिया। भिंचू ने कपड़े से देवता की मूर्ति को छाती में बांध लिया। चलते-चलते वे 'बौरूभीथरी' नामक स्थान पर पहुँचे। रात्रि में जब वे दोनों भाई उस स्थान पर विश्राम करने लगे तो वहां राक्षस का उन पर आक्रमण हुआ। देवता महाराज की कला से उन दोनों भाईयों को वहां पर राक्षस नुकसान न पहुंचा सका।

प्रातःकाल बौरूभीथरी के लोगों से पता चला कि वहां पर राक्षस ने आतंक मचा रखा है। देवता महाराज की आन्तरिक कला के संकेत तथा लोगों के आग्रह पर भिंचू ने एक मास तक बौरूभीथरी में ही रहने का निर्णय लिया। देवता महाराज ने बाघ का रूप धारण कर राक्षस को मार दिया। वहां से भिंचू और भिखू किरन परगना पहुंचे। किरन परगना के मन्दिर में देवता की मूर्ति को रखा गया। वहां के स्थानीय देवता और धरमडू देवता की आपस में नहीं बनी। कुछ दिनों तक किरण में निवास करने के बाद भिंचू और भिखू दोनों वहां से चल पड़े। वहां से वे बांदूर नामक स्थान पर पहुंचे। भिखू बान्दूर में ही एक औरत के घर ठहर गया। उसके वहीं पर औलाद हुई जो भिख्टा खानदान के रूप में विख्यात हुई। भिंचू वहां से

अकेले ही देवता को लेकर चल पड़ा और शाक परगना पहुंचा। शाक के देवता कणेईरा से भी धरमडू देवता की अनबन हुई। वहां से देवता को पौड़िया लाया गया। पौड़िया में महासू का वास था। वहां पर भी धरमडू देवता की महासू से नहीं बनी। वहां से भिंचू देवता को लेकर चंदेवण नामक स्थान पर पहुंचा।

चंदेवण में उन दिनों एक ठाकुर का बासा था। ठाकुर की मृत्यु हो चुकी थी और वहां पर उसकी ठकुराईण ही रहती थी। रानी की दासियों से भिंचू को पता चला कि बासा में केवल ठकुरानी ही रहती है। ठकुरानी को दासियों ने सूचना दी की कोई ब्राह्मण देवता को साथ लिए हुए वहां आया है। ठकुराईण ने देवता को उचित स्थान पर ठहराने का प्रबंध किया। देवता यहां कई दिनों तक रहा। यहां पर रहते भिंचू ने एक ब्राह्मण कन्या से विवाह किया। उन्हें एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम बौमा रखा गया। भिंचू की मृत्यु हो जाने के बाद डमाल और सैटाण खूंदों ने बौमा को देवता सहित पुजारली ले जाने की योजना बनाई ताकि देवता की स्तुति के लिए योग्य व्यक्ति उपलब्ध हो सके।

देवता की अनुमति से बौमा वहां से चल पड़ा। धरमडू देवता को भी वह अपने साथ ले गया। बौमा को जगराह में जमीन प्रदान की गई तथा देवता को पुजारली मंदिर में रखा गया। चंदेवण में रहते हुए धरमडू देवता का वहां के स्थानीय देवता नाग के साथ अच्छा मेल-मिलाप रहा। इसी कारण भाबर के नाग देवता और पुजारली के देवता के इलाके देवोत्सवों के लिए निश्चित किए गए। जब नाग देवता की पालकी किसी उत्सव में निकलती है तो पुजारली से धरमडू देवता की मूर्ति को लाया जाता है। इसी प्रकार जब डकरेई देवता की पालकी जागरा आदि उत्सव पर जाती है तो नाग देवता की एक मूर्ति को साथ रखा जाता है।

शणेशर देवता का नाम डकरेई तब पड़ा जब इन पहाड़ी क्षेत्रों में गोरखों ने आक्रमण किया था। सन् १८१४-१५ ई. में गोरखा युद्ध के समय गोरखा कमाण्डर अमर सिंह थापा ने इस मन्दिर को लूटने का प्रयास किया था। स्थानीय बोली में इस घटना को 'गोरखाद-कुल्डाद' के नाम से जाना जाता है। गोरखों के आतंक को देखते हुए सैअटाणों ने कारदारों और पुजारियों के सहयोग से देवता को धौला ढंकार में एक सुरक्षित स्थान पर छुपा लिया। गोरखों की पराजय के बाद देवता को वापस मन्दिर में स्थापित किया गया। उन्हीं दिनों से देवता 'डकरेई' नाम से विख्यात हुआ। धरमडू देवता के थल्डाकोट से पुजारली तक के आगमन का इतिहास पांजड़े में सुरक्षित है। अस्सी वर्षीय पंडित गियारू राम को जिस रूप में पांजड़ा याद था, यहां पर उसी रूप में इसे उद्धृत किया जा रहा है।

घरमण्डु देवता गाथा पांजड़ा

पहाड़ी पाठ	**हिन्दी पाठ**
बोलअ दुई तेनअ भाई रा रौआ झौगड़ा दैवा जाए।	**तब उन दोनों भाईयों का हे देवता**
दुई तेनअ भाई रा रौआ झौगड़ा दैवा जाए।।१।।	**वहां पर आपस में झगड़ा हो गया।।१।।**
बोलअ केंई रा अ झौगड़ा दैवा केंई रे अ कांगअ।	**उन दोनों भाईयों का किस पर झगड़ा हुआ**
केंई रा अ झौगड़ा दैवा केंई रे आ कांगअ।।२।।	**और किस पर रंजीश पैदा हुई।।२।।**
बोलअ दुई तेनअ भाई रा भाजा ढौबदा दैवा बांडा।	**उन दोनों भाईयों का परस्पर झगड़ा**
दुई तेनअ भाई रा भाजा ढौबदा दैवा बांडा।।३।।	**हिस्से-बंड्डे पर हुआ।।३।।**

बोलअ जेठा मांगअ डाढका मांगअ बै कौणछा दैवा हांडा।
जेठा मांगअ डाढका मांगअ बै कौणछा दैवा हांडा।।४।।
बोलअ केंई रा अ डाढका देवा बै केंई रा अ हांडा।
केंई रा अ डाढका दैवा बै केंई रा अ हांडा।।५।।
बोलअ सूनै रा अ डाढका दैवा बै रूपै रा अ हांडा।
सूनै रा अ डाढका दैवा बै रूपे रा अ हांडा।।६।।

ज्येष्ठ भाई सोने का डाढका मांग रहा था और
कनिष्ठ भाई हांडा मांग रहा था।।४।।
किस धातु का डाढका था और किस
धातु का हांडा था।।५।।
सोने का डाढका था हे देवता! और
रूपे का हांडका था।।६।।... आदि

देवोत्सव एवं प्रबन्ध व्यवस्था

देवता महाराज डकरेई की परम्पराएँ आदि शक्ति ब्रह्मा, विष्णु, शिव त्रिदेवों की शक्तियों के तथ्यों को समेटे हुए है। देवता का शीतऋतु में इन्द्रपुरी गमन, इन्द्रपुरी से कला सम्पन्न होकर लौटना और समाज को सुख-समृद्धि प्रदान करना, श्रावण, भाद्रपद, असौज तथा कार्तिक मास में देवता द्वारा शयन करना आदि परम्पराएं आज भी देवता के क्रिया-कलापों में विद्यमान है। स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, गुण-अवगुण तथा श्रेष्ठ समाज के निर्माण के देववचन देवता महाराज के उत्सवों, त्यौहारों एवं मेलों में निश्चय ही समाज को उपलब्ध होते हैं। त्यौहारों एवं उत्सवों में उपलब्ध होने वाले इन देव वचनों के आधार पर ही यहां के समाज का आचार शास्त्र निर्मित हुआ है तथा रीति-रिवाज़ भी बने हैं। यहां देवता महाराज के उत्सवों एवं प्रबन्ध व्यवस्थाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

संक्राति पूजन : प्रत्येक मास की संक्राति को देवमन्दिर में पूजन का विधान है। परगने के श्रद्धालु सुख-शान्ति की कामना लिए प्रातः काल ही देव प्रांगण में पधारते हैं। पूरे दिन कार्यक्रम चलता रहता है। लोग आटा, घी और गुड़ को मन्दिर में प्रसाद हेतु चढ़ाते हैं। बैसाख संक्राति को देवमन्दिर में विशेष उत्सव होता है। इस दिन बुरांस पुष्पों की लम्बी माला से मन्दिर को सजाया जाता है। पुजारली गांव के झबटोली वंश के मुखिया को देव मन्दिर के लिए किल्टे में बुरांस के पुष्प लाने का दायित्व परम्परागत रूप से आबंटित है। मुखिया को देवता का 'हारशा' कहा जाता है। इस वंश के मुखिया गोडू इस परम्परा को निभाते आए हैं। संक्राति पूजन को महासुवी बोली में 'साज़ा पूजना' कहा जाता है।

शावणिअ उत्सव : श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी तिथि को देवमन्दिर में शावणिअ उत्सव मनाने की प्रथा है। इस दिन देव मन्दिर से पालकी सजा कर लोगों के दर्शनार्थ बाहर लाई-जाती है। पालकी में देवों के मुहरे रखे जाते हैं। डमाल खूंद, सैअटाण और बजरोठी वंश के लोग परम्परागत नृत्य करते हैं। तत्पश्चात् विधि-विधान पूर्वक पालकी को जलारी अथवा देवल़ नामक स्थान पर ले जाया जाता है। देवल़ में एक हवनकुण्ड विद्यमान है। पालकी से मुहरों को उतारकर वहां विद्यमान पीढ़ी पर सजाया जाता है। तत्पश्चात् वेदमन्त्रों से यज्ञ प्रारम्भ होता है। इस यज्ञ को स्थानीय बोली में 'हूम' कहा जाता है। देवता महाराज 'हूम' ग्रहण करने के पश्चात् उपस्थित जनसमुदाय के समक्ष कुछ कालक्रमिक घटनाओं का बखान करके लोगों को आशीर्वाद प्रदान करते है। सांयकाल देवता की पालकी मन्दिर में लाई जाती है।

जागरा : यह उत्सव देवता के भ्रमण से सम्बन्धित है। इस उत्सव के लिए भाद्रपद अथवा मार्गशीर्ष मास निर्धारित हैं। शुभ मुहूर्त में देवता को पालकी में सजा कर साज़-बाज़ के साथ गांव-गांव ले जाया जाता है। ये गांव देवता महाराज की अपनी सीमा को सांकेतिक करते हैं। गांव में चिन्हित घर में

रात्रि भर देवता महाराज की विशेष पूजा होती है। अन्य दिनों में तो मन्दिर में प्रातः और सांय काल की सामान्य पूजा होती है परन्तु जागरा उत्सव में विधि-विधान पूर्वक रात्रिभर पूजा होती है। जागरा उत्सव की भव्यता देखते ही बनती है। रात्रि पूजन में श्रौत परम्परागत से जो गायन प्रस्तुत किया जाता है, उसके दो पक्ष है। एक पक्ष में देवता महाराज की मूर्तियों को क्रमशः धनारे से पूजा जाता है। इस पूजन में स्थानीय बोली में निबद्ध मन्त्रोंच्चारण किया जाता है। इन्हें 'काण्डी' कहा जाता है। दूसरे पक्ष में वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत एवं पुराणों के उपाख्यान होते हैं जो कथा रूप में उपस्थित समाज को सुनाए जाते हैं। इन्हें 'भाष' कहते हैं।

भरांशी उत्सव : देवता महाराज डकरेई के दो रथ है। चालदा रथ जो पालकी के रूप में जागरा उत्सव पर गांव-गांव भ्रमण करता है। बोठा मोहरे का रथ जो केवल भरांशी एवं जातर उत्सव में ही मन्दिर से बाहर निकलता है। देवता के भण्डारी सुरेन्द्र सिंह का कथन है कि देवता महाराज डकरेई का अन्तिम भरांशी उत्सव ६४ वर्ष पूर्व आयोजित किया गया था। सुणी-पाण्टी में आयोजित जातर का भी पता चलता है। भंराशी उत्सव के आयोजन के कड़े नियम होते हैं।

देऊठन : २० गते से मार्गशीर्ष मास १० गते के मध्य में देऊठन नामक उत्सव मनाया जाता है। इसे हरि प्रोदनी एकादशी भी कहा जाता है। देऊठन का शाब्दिक अर्थ है देवता का उठना। प्रत्येक वर्ष कार्तिक मास (पौराणिक परम्पराओं में विद्यमान) भगवान विष्णु का चतुर्मास (श्रावण, भाद्रपद, आश्विन तथा कार्तिक) का शयन तथा उसके बाद उठना इस देऊठन उत्सव में प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है। यह उत्सव विष्णु के शयन के पश्चात् उठने की प्रक्रिया को द्योतित करता है। इस कालावधी में देवताओं का उतरायण में वास होता है। रात्रि में देवपूजन होता है। यह पूजन विधि-विधान पूर्वक आयोजित किया जाता है। इस उत्सव का उद्देश्य यज्ञ के माध्यम से देवकला को जागृत करना भी होता है। प्रत्येक घर में एक क्रिया 'छिमणा' की जाती है। छिमणा का अर्थ होता है प्रत्येक घर मे गेरू से स्वास्तिक चिन्ह बनाना। घर की पहले लिपाई की जाती है तत्पश्चात् उसे छिमते हैं। तब यह पता चलता है कि अब यह घर देवता के रहने के लिए तैयार है।

नाअण : यह देवता महाराज डकरेई की बद्री नाथ और केदारनाथ धामों की यात्रा करने की परम्परा है। इस यात्रा का आयोजन सभी ग्रामों के प्रतिष्ठित कारदारों एवं सदस्यों की बैठक में परस्पर चर्चा (खूंबली) के उपरान्त ही किया जाता है। इस यात्रा में सैअटाण, पुजरों और भिऊचाण वंश के पण्डितों के सदस्यों को जाना पड़ता था। यात्रा पैदल हुआ करती थी। पुजारली ग्राम से बद्रीनाथ एवं केदारनाथ धामों तक कई महीनों पैदल यात्रा हुआ करती थी। देवता महाराज का जहां रात्रि में ठहराव होता था, आज वे स्थान भी पवित्र स्थलों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये स्थान देवताल (क्यारनू), टिकरी (त्यूनी) आदि से प्रारम्भ होकर केदारनाथ, बद्रीनाथ धाम तक निश्चित किए गए हैं। वापसी में पुजारली और गियालिया में देवता महाराज का ठहराव होता है। चार धामों की यात्रा महीनों चलती रहती है। यही 'नाऊण' अर्थात् देवस्नान की सुन्दरता है। ढोकरे के साद उत्तराखण्ड में मार्ग दिखाने का कार्य करते थे।

प्रबन्ध समिति : देवता महाराज डकरेई की एक स्थाई प्रबन्ध समिति है। यह परम्परागत समिति

भी कहलाती है। इस समिति के सदस्य वंश परम्परा अथवा खानदानों के अनुसार होते हैं। इस समिति में भंण्डारी, पुजगी, गुर, शुरजाई, शुभ मुहूर्त ज्ञानी और देवसमाज के विभिन्न वर्गों के खानदानों के सियाणे होते हैं। दूसरी अस्थाई कमेटी है। जब मन्दिर में कोई उत्सव, यज्ञ तथा जीर्णोद्धार आदि का कार्य करना होता है तो स्थाई समिति के सदस्यों की बैठक में ही इस समिति के सदस्यों का चयन किया जाता है। दोनों समितियों का कुछ विवरण इस प्रकार है।

भण्डारी : भण्डारी का पद खानदानी है। ममवी गांव का कमटोली वंश भण्डारी का कार्यभार देखता आया है। वंशपरम्परागत रूप से कमट, दिलमी, कमना, जीता आदि प्रभावशाली भण्डारी रहे हैं। वर्तमान में सुरेन्द्र सिंह भण्डारी इस पद पर आसीन है।

गुर : देवता अपनी कला का बखान गुर के माध्यम से करता है। देवता का प्रकटीकरण गुर के द्वारा ही होता है। देवता स्वयं अपना अवतार किसी भी खानदान के व्यक्ति में कर सकता है। बुद्धिया पुजारा, पण्डित झतू, पण्डित दौत आदि देवता महाराज डकरेई के विशिष्ट गुर रहे हैं। वर्तमान में पण्डित बेलीराम और पण्डित केवलराम गुर का कार्य करते हैं। नरसिंह देवता का गुर पुजारली ग्राम का प्रवीण कुमार है।

पुजारी : पुजारी परम्परागत रूप से देव मन्दिर में सुबह शाम की पूजा करता है। पूर्व में पुजारली स्थित पुजारा खानदान पुजारी का कार्य करता था। इन्हें पुजगी भी कहा जाता है। पुजारा खानदान में बुद्धिया, केअरू, धौंख और सितलू एवं बौमाईक खानदान के पण्डित झतू तथा दौत और मिंऊटा खानदान के पण्डित हरू प्रतिष्ठित पुजगी थे। वर्तमान में बौमाईक खानदान के पण्डित बेलीराम, भिंऊटा खानदान के संजय शर्मा और चशटा खानदान के पण्डित केवल राम पुजगी का कार्य देख रहे है। जागरा उत्सव पर विशेष पूजा में बौमाईक खानदान के पण्डित रामू और पण्डित पुरिया भी पुजगी का कार्य देखते थे। पुजगी वंशों की स्त्रियां भी देवता महाराज डकरेई की अनन्य भक्त रही है। इनमें सोदा पुजारी, सुकी पुजारी, पण्डित हरू की पत्नी पदमू, पण्डित दौत की पत्नी लच्छमू पण्डित झतू की पत्नी दौखणू आदि प्रसिद्ध हैं। पुजारली के पुजारों के भानजे रामदास व अपनी पत्नी जोची और सुखिया आदि भी देवता के अनन्य भक्त थे।

चौकीदार : सैटाण वंश के ढण्टा खानदान को देवता की चौकीदारी का कार्यभार सौंपा गया था। देवता महाराज जब भी बद्रीनाथ और केदारनाथ धामों की यात्रा (नाअण) पर जाते हैं, उस समय इसी वंश को चौकीदारी का कार्य देखना पड़ता था। भदरू और कालू इस वंश के प्रतिष्ठित चौकीदार थे। भरांशी देवोत्सव के समय जब भी जग बनता था, उसके भोग को ढण्टा खानदान का व्यक्ति ही सर्वप्रथम स्पर्श करता था। तत्पश्चात् सभी लोग उस भोग को ग्रहण करते थे।

स्थाई कारदार : स्थाई कारदार देवता के विधि-विधान, कालगणना, पूजा विधान, वेद-पुराण के मन्त्रों, आख्यानों तथा उपाख्यानों के मर्मज्ञ विद्वान होते हैं। इन्हीं के आधार पर देवकार्य आयोजित किए जाते हैं। बौमाईक, भजरोठी, पुजारा तथा भिऊंटा वंश के विद्वान वंशदर वंश परम्परा से कार्य करते आए हैं। वर्तमान में पण्डित विद्यादत, पण्डित बेलीराम, पण्डित केवलराम, पण्डित मोहन लाल, पण्डित

श्यामलाल, पण्डित प्रेमदत, पण्डित दौलत राम व पण्डित रामसरन देवता महाराज के स्थाई कारदार का कार्यभार संभाले हुए हैं।

जगराई : देवता महाराज डकरेई का जागरा उत्सव वर्ष में एक बार अवश्य आयोजित होता है। देवता महाराज का अपनी सीमा रेखा के भीतर विद्यमान भजरोठ, टापरी, भिंऊटाडी, रूपाड़ी, शंगडोली, जगराह, डंडकांल्डी, ममवी और पुजारली गांव में निर्धारित तिथि को प्रवास होता है। जागरा उत्सव पर विशेष पूजा का विधान है। रात्रि में जागरा गायन की परम्परा है। जागरा गायन में वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत और पुराणों के मन्त्रों, चरितों और उपाख्यानों का गायन होता है। देवता महाराज का श्रौत परम्परागत अपना पूर्ण 'जागरा' है जो अब लिखित पाण्डुलिपि में भी उपलब्ध है। जागरा गायन के विद्वान पण्डित कांसिया थे। उन्होंने ने भी अपने पूर्वजों से जागरा सीखा था। पण्डित कांसिया के साथ पण्डित दौत, पण्डित हरू, पण्डित झतू, पण्डित पुरिया और पण्डित रामू भी जागरा गायन के आधिकारिक विद्वान थे। कांसिया की पत्नी पुरनू, पुरिया की पत्नी जानकी और रामू की पत्नी बिन्दी और पण्डित मंगत राम की पत्नी केवला व पिंगला भी देवता महाराज की अनन्य भक्त थी। आज जागरा का गायन पण्डित बेलीराम करते है।

बाजगी : बाजगी अथवा बंजतरी देवता महाराज डकरेई की शोभा यात्रा और सुबह-शाम की पूजा में ढोल, नगाड़ों, हर्नशींगों, करनालों और शहनाई आदि वाद्य यन्त्रों को बजाने वाला खानदान है। पुजारली का ढाकी वंश परम्परागत रूप से एक प्रतिष्ठित खानदान रहा है। वाद्य यन्त्रों और कला के पारखी एक से बढ़कर एक कलाकार इस वंश के रहे हैं। मलू, निरमी, कांसिया और शंकर संगीत के विभिन्न रागों का अनुकूल वादन करते थे। इसी वंश में शंकरू, गौट, टण्डी तथा राधू वाद्य यन्त्रों का विधि-विधान पूर्वक वादन किया करते थे। निरमी और शंकर के सन्दर्भ में कहा जाता है कि विभिन्न वैदिक तालों का इन्हें ज्ञान था। सांयकालीन सधीवा, शयन से पूर्व नबद, प्रातः कालीन बेल़ और दिन की पूजा को ये बाजगी पृथक्-पृथक् ताल में बजाते थे। निरमी और शंकर को 'जड़ीभरथ' बजाना भी आता था।

देवता महाराज के अधिकार क्षेत्र के गांव

देवता महाराज डकरेई की प्रबन्ध समिति में कालक्रमानुसार विभिन्न वंशों के सदस्यों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। देवता महाराज के अधिकार क्षेत्र में आने वाले गाँव तथा वहां के वंशजों का उल्लेख प्रस्तुत है।

शंगडोली ग्राम : इस ग्राम में डमाल खूँद का वास है। डमाल खूँद की पाँच आले (वंश की शाखाएँ) स्थित हैं। इनमें चमटा, झगड़ेट, झाल्टा, कंदरेट और थदटा प्रसिद्ध है। चमटा खानदान में शोभू, अतरसिंह, मांईया, दली, बांका, ध्रुवु, धौंख, कलिया, बलिया, हीरा सिंह, थेबू, सिधू, देबर, सुखराम और राजेन्द्र सिंह आदि देव कार्यों के प्रतिष्ठित सदस्य थे। झगड़ेट खानदान में धीरजू, सकू तथा हरू, थदटा खानदान में गांगिया, मोतिया और बालिया आदि प्रतिष्ठित सदस्य थे। झाल्टा खानदान में मौहतू, सही राम, बुद्धि सिंह आदि प्रतिष्ठित सदस्य थे। कंदरेट वंश में भी काना सिंह तथा मुशू जैसे सदस्य देवकार्यों

से जुड़े रहे हैं। डमाल खूँद की इन पाँच आलों में श्रीमती मांई, घदी, चानणू, फूलणू व बिंदरू जैसी प्रतिष्ठित महिलाएं भी देव सेवा में भागीदार थी। आज इन वंशों के उत्तराधिकारी देवता महाराज की सेवा में अपनी भागीदारी निभाते हैं।

ममवी ग्राम : ममवी एक ऐतिहासिक गांव है। ग्राम देवता महाराज डकरेई के भण्डारी इसी ग्राम से रहे हैं। इस ग्राम में कालक्रम से कमटोली, पांजटा, ढण्टा और फदेट वंशों की स्थापनाएँ रही है। ये वंश सैअटाण खूँद के नाम से जाने जाते थे। सैअटाणों को देवता के भण्डारी तथा चौकीदार का कार्यभार आबंटित था। परम्परागत रूप से कमटोली वंश भण्डारी का कार्य देखते थे। कमाल चन्द भण्डारी इस वंश के प्रतिष्ठित व्यक्ति है। इस वंश में कमट, दिलमी, कमना, केउरू और जीता एवं सोहन सिंह देवता के भण्डारी के साथ-साथ प्रभावशाली खूँद भी थे। सैअटाण के ढण्टा खानदान को चौकीदारी का कार्य भी आबंटित था। ढण्टा खानदान में भदरू और कालू प्रतिष्ठित पूर्वज थे। कमटोली वंश की एक शाखा सनेट तथा दूसरी फदेट रही है। सनेट खानदान में जालमू और मौजी तथा फदेट खानदान में फदी, शिबू, गांगिया और गियारू प्रतिष्ठित पूर्वज थे जो देवकार्यों के लिए सदा तत्पर रहे थे। पांजटा खानदान में निरमी और साधू प्रभावशाली व्यक्ति थे। परवर्ती काल में इस वंश के भानजे भागमल और शौअजू खानदान के वारिस बने। इनके वंशज भी देवता के कार्यों में सहभागिता निभाते हैं। ममवी ग्राम में ही परवर्ती काल में गढवाल से धाईया नामक व्यक्ति आकर बसा। उसके वंशज भी देवता के भक्त हैं। कमटोली वंश की महिलाएं भी देवास्था में तत्पर रहती थी। इन महिलाओं में श्रीमती सुन्दरू, श्रीमती सत्या, श्रीमती देवकू देवी और श्रीमती सादी इत्यादि देवता महाराज की अनन्य भक्त थी।

चौअटा ग्राम : ममवी से लगता चौअटा ग्राम भी देवता के अधिकार क्षेत्र का गांव है। यहां पर चैटाल खूँद निवास करते थे। आज यहां पर निवास करने वाले पूर्ववर्ती वंश समाप्त हो चुके हैं। शावणिअ उत्सव पर देवता का गुर एक पंक्ति आज भी उच्चारित करता है– 'चौअटै रै चैटाल उशे' अर्थात् चौअटा के वंशज आज समाप्त हो चुके हैं। यहां के वंशजो के खेत, खलियान और घरों के अवशेष आज भी यहां उपलब्ध हैं।

घागना ग्राम : घागना में भी एक ग्राम स्थापित था जो कि देवता के अधिकार क्षेत्र में आता था। यहां पर घरों और खेतों के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। शावणिअ देवोत्सव पर देवता का गुर जलाअरी में यज्ञ के अवसर पर एक पंक्ति यहां के वंशजों के सन्दर्भ में कहता है। 'घागनै रै घगनाल उशे' अर्थात् घागना के वंशज भी समाप्त हो चुके हैं।

बंल्डी ग्राम : बंल्डी में भी डकरेई देवता के अधिकार क्षेत्र का गांव स्थापित था। अब यह उजड़ चुका है। यहां पर भी खेत, खलियान और घरों के अवशेष शेष हैं। इन ग्रामवासियों के संदर्भ में भी देवता महाराज वही पंक्ति कहता है– बंल्डी रै बंल्डोऊ उशे' अर्थात् बंल्डी के ग्रामवासी भी समाप्त हो चुके हैं।

पुजारली ग्राम : जिस स्थान पर देवता महाराज डकरेई का मन्दिर विद्यमान है, वहां पर पुजारी वंशों की स्थापनाएं हैं। इस ग्राम में पुजारा खानदान स्थापित था। कहा जाता है कि पुजारा वंश के जमाईक खानदान के पूर्वज यहां के मूल निवासी थे। परवर्ती काल में हाटकोटी से सर्वप्रथम जो पूर्व पुरुष

यहां आया था वह शिबू था। इसके वंशज सधेट के नाम से यहां स्थापित हुए। कहते हैं कि पुजारों के यहां अट्ठारह घर थे। सधेट वंश का नामी पूर्व पुरुष भाबर गया। इसके वंशज नामटे कहलाए। नामटा वंश नाग देवता का पुजारी बना। जमाईक वंश के केअरू, धौंख और सितलू प्रतिष्ठित पुजारी थे। परवर्ती काल में पण्डित हरू और पण्डित दौत के परिवार भी पुजारी का कार्य देखते थे। पुजारली में ही देवता महाराज का सेवक वंश झबटोली भी विद्यमान है। इस खानदान में गोडू, टंईया, जेठू, संता, सूरतू तथा पोशी आदि देव के कार्यों को करने वाले थे। अपने जीवनकाल में गोडू को वैशाख की संक्राति के अवसर पर बुरांस के फूल और इन फूलों की माला बनाने के लिए मूँजी का घास लाने का जिम्मा था।

जगराह ग्राम : जगराह गांव में बौमाईक तथा झाल्टा वंश स्थापित है। इनका वर्णन बौमाईक वंशावली में उल्लिखित है तथा झाल्टा वंश का वर्णन ग्राम शंगडोली में दिया गया है। बौमाईक वंशजों में पण्डित विद्यादत, पण्डित नरेन्द्रदत्त, पण्डित रविन्द्र दत आज प्रतिष्ठित कारदार हैं। इन वंशों के अतिरिक्त यहां केलवी से आए हुए करालटा तथा कुजवी से आए हुए कजाल वंशज भी स्थापित हैं। करालटा वंश के नरिया, तीरू, कालसी, कौका, खेटू एवं कजाल वंशज मांऊ, धिंगडू, रतनू, तथा राईया आदि देवता महाराज डकरेई के कार्यों को करने वाले भक्त थे। आज इनके वंशज भी देवकार्यों में संलग्न रहते हैं।

डंडकांल्डी ग्राम : डंडकांल्डी ग्राम भी देवता महाराज डकरेई के अधिकार क्षेत्र का एक प्रतिष्ठित ग्राम है। यहां के वासी बौमाईक वंशज है। इस गांव के मुखिया, देबणू, बुद्धिया, पुरिया, रामू, झतू, नन्दराम, पण्डित प्रेमदत्त तथा सुनील शर्मा आदि प्रसिद्ध पूर्व पुरुष थे। इस वंश का पूर्ण विवरण बौमाईक वंशावली में उल्लिखित है। आज पण्डित केवलराम, पण्डित बेलीराम, पण्डित सालिगराम, पण्डित मोहनलाल व पण्डित रमेश कुमार आदि देवता महाराज के कारदार हैं। परवर्तीकाल में पण्डित गियारू तथा उनकी पत्नी श्रीमती चानणु देवी इस ग्राम में बस गए। लेखक स्वयं भी इसी वंश का वंशज है। पण्डित झतू का परिवार भी परवर्तीकाल में यहां से जाकर शेईला ग्राम में बस गया। इस परिवार के सदस्य आज भी देवकार्य में अग्रणी भूमिका निभाते हैं।

बूड़च ग्राम : बूड़च ग्राम यद्यपि पौडिया पंचायत के अन्तर्गत आता है परन्तु यहां का गजटा खानदान देवता महाराज डकरेई को स्थान देवता के रूप में पूजता आया है। देवता के प्रत्येक उत्सव में गजटा खानदान की उपस्थिति रहती है। इस खानदान में गजी, सन्यासी, ताना, धूवलू, किहरू, सामा, झाथिया, जीजू, मोछू, हिमा, मस्ता, मंगतराम, रेलूराम, टिंऊ, जमानदास, संतराम, मांऊ, सुखिया और केवलराम देवता महाराज के सेवक रहे हैं। आज इस खानदान के वंशज भी देवकार्य में सेवादार के रूप में अपनी भूमिका निभाते हैं।

भजरोठ ग्राम : भजरोठ एक ऐतिहासिक ग्राम है। यह ग्राम भी देवता महाराज डकरेई के अधिकार क्षेत्र में आता है। देवता महाराज की गाथा में जिस पूर्व पुरुष भिंचू का उल्लेख आया है, उसी से समस्त भिऊचाण वंश सभ्यता पथ पर आगे बढ़ा। भिंऊचाण वंश की जो शाखा भजरोठ ग्राम में स्थापित हुई, वह भजरोठी कहलाई। भजरोठी गांव में कालक्रम से भिंऊचाण वंश की अनेकों शाखाएं व उपशाखाएँ अस्तित्व में आई। इन शाखाओं को खानदान, खटा या आले कहा जाता है। भिंऊचाण की जो शाखाएँ

भजरोठ गांव में अस्तित्व में आई, उनमें – मढाईक, असाईक, उदाईक, धरताईक, सरटाईक, चशटाईक और घेराईक आदि प्रसिद्ध हैं।

मढाईक वंश में मढू पूर्व पुरुष था। उसी के आधार पर मढाईक वंश प्रसिद्ध हुआ। इस वंश के मढू, झाला, भोला, राईसिंह और गुलाबू देवता के कारदार थे। यह खानदान रूपाडी ग्राम में बस गया। मढाईक खानदान का एक वंश जौअटा कियारनू ग्राम में जा कर बस गया। इस वंश के जौअटा, धीरजू और देविया कारदार थे। असाईक और उदाईक भजरोठ ग्राम में ही बस गए। असू असाईक वंश का पूर्वपुरुष था। उदाईक वंश का पूर्व पुरुष उदिया था। इस वंश में उदिया, रणिया, झेंअकू, दासिया, मोतीराम, जंदीराम, नंदराम, सूरतराम, डेंअटा, चेऊ, पनिया, झगडू, राईया, मिथणू आदि देवता के कारदार थे। सरटाईक वंश का पूर्व पुरुष सरिया प्रसिद्ध था। धरताईक वंश में आदिया, रणिया, थेबू, जमनू, नंतिया, सेरिया, छाजू, शंकर और मानदास प्रसिद्ध कारदार थे। जोगटे खानदान में जोगी पूर्व पुरुष था। इसी वंश के जोगी, गोडू, लल्छू, नन्दा, मूरतसिंह और दलतू देवता के प्रसिद्ध कारदार थे। यह वंश परवर्ती काल में टापरी ग्राम में जा कर बस गया। चशटे वंश में चशू, धरमा, निक्काराम और दुरगू देवता के कारदार रहे हैं। नेवली खानदान में मांऊ तथा मस्तराम भी देवता के कारदार थे। घेराईक वंश में घेरा पूर्व पुरुष था। इस वंश में मेघा का जन्म हुआ जो उत्तराखण्ड के निमगा महेन्द्रथ नामक स्थान में जा कर बस गया। आज इस स्थान पर भिंऊचाण का मेघाटू वंश स्थापित है। इसी स्थान से बहुत पहले नूपा नामक पण्डित सिरमौर के सिधोटी ग्राम में जा कर बस गया। सिधोटी का भजरोठी वंश आज भी यहां अस्तित्व में है।

हिमालय का समाज वस्तुतः मनुमय है। वर्तमान वैवस्त मनु विवस्वान् अर्थात् सूर्य के पुत्र है। कुछ विद्वान भिंऊचाण शब्द की व्युत्पति इसी विवस्वान से करते है जो ठीक नहीं। भिंचू पूर्वज से ही भिंऊचाण बना है। परन्तु यह बात भी सही है कि भजरोठ ग्राम तथा जगराह ग्राम के भिंऊचाण कुल के ब्राह्मण सूर्यमान के आधार पर अपना पंचाग निकालते थे। भिंऊचाण वंश में ज्योतिष विद्या के प्रसिद्ध विद्वान ब्राह्मण थे। यहां प्रत्येक घर में सांचा विद्या परमपरागत ढंग से सिखाई जाती थी। भिंऊचाण ब्राह्मणों के पास आज भी उगूत और फलित ज्योतिष के कई सांचे विद्यमान हैं। कहा जाता है कि भजरोठ ग्राम में पहले कुपवी उप तहसील के चाड़ खूँद का निवास था। चाड़ों की कुलेदवी (जागा) आज भी यहां विद्यमान है। आज इस देवी की पूजा-अर्चना भजरोठी ही करते हैं। भजरोठ ग्राम में परम्परागत मेला उत्सव भी आयोजित किया जाता है जिसमें खूँद निमन्त्रित किए जाते हैं और ठोडा नृत्य भी होता है।

रूपाड़ी-बडौला ग्राम : रूपाड़ी ग्राम में प्रतिष्ठित मढाईक खानदान स्थापित है। ये देवता के कारदार हैं। बड़ौला पण्डित मानदास एक प्रतिष्ठित कारदार थे। इस वंश का वर्णन बजरोठ ग्राम में किया जा चुका है। इस वंश के अतिरिक्त रूपाड़ी में प्रतिष्ठित बजरांऊटा, करींऊटा तथा दंगड़ाईक खानदान भी स्थापित हैं। ये ग्राम भी देवता महाराज डकरेई के अधिकार क्षेत्र में स्थापित है। बजराऊंटा खानदान में धीरजू, जानिया, प्रीतमू, रंगिया, पाणू, झाला राम, मंगलू, टिबलू, भेतुराम, सूरतराम, परसू, रतनू और सईया, करीऊंटा खानदान में करीऊं, गालू, मंगलू और भदरू एवं दंगडाईक खानदान में दंगडू, पोशिया

और सौनिया देवता के सेवक रहे हैं। टिबलू को बम्टा पंचायत में दुर्लभ जड़ीबूटियों के वैद्यराज के रूप में जाना जाता था। बजरांऊटा वंश के वंशजों को देवता महाराज के शावणिअ उत्सव में कोल्हू से तेल लाने का जिम्मा है अतः यह देवता का हारशा वंश है। देवता को तेलाई इसी वंश की चढ़ती है। दंगड़ाईक खानदान का मंगलू शेड़खूलिया वीर का गुर था। वर्तमान में रतनू राम, हरिया और मस्तराम देवता महाराज के कार्यों को देखते हैं।

भिऊंटाडी ग्राम : यह देवता महाराज डकरेई के अधिकार क्षेत्र का एक प्रतिष्ठित ग्राम है। यहां पर भिउंटा खानदान के वंशज स्थापित हैं। ये देवता के पुजारी और कारदार रहे हैं। भिउंटा खानदान में केअरू, देवणू, मोतिया, कांसिया, पुरिया, बुद्धिया, हरू, नन्दराम, सूरतराम, बीर सिंह, मौजी, मंगतराम, बिपन आदि कारदार विख्यात रहे थे। आज पण्डित झीणूराम ओर पण्डित लच्छीराम सेवादार का कार्य देखते हैं।

धोबटाड़ी ग्राम : देवता महाराज डकरेई के अधिकार क्षेत्र में धोबटाड़ी ग्राम भी आता है। यहां का धोबटा वंश देवता के कारदार के रूप में प्रतिष्ठित है। इस खानदान के मोतिया, रोलू, फिनादास और मांऊ आदि देवता महाराज प्रतिष्ठित सेवादार रहे थे। वर्तमान में उपर्युक्त ग्रामों के अतिरिक्त ग्राम बम्टा के झगटा, प्रिम्टा और पबटा खानदान के वंशज अपने कुल देवता नाग की पूजा-अर्चना के साथ देवता महाराज डकरेई का परम्परागत भाग भी अर्पित करते हैं। झगटा इस क्षेत्र का बलशाली खूँद रहा है। ग्राम बम्टा के इन वंशजों के अतिरिक्त इसी पंचायत के धाबटा और खणिटू खानदान के वंशज भी इसी विधि-विधान से डकरेई की पूजा-अर्चना करते हैं। ग्राम नार तथा ग्राम राऊतन में यहां के जो वंशज परवर्ती काल में इन क्षेत्रों से जाकर वहां बस गए, वे भी देवता महाराज डकरेई के विभिन्न उत्सवों, पर्वों और त्यौहारों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं तथा पूजा-अर्चना में सम्मिलित होते हैं। देऊठन और जागरा उत्सव में जब देवता महाराज डकरेई का मुहरा नागदेवता के मन्दिर में जाता है तो उपर्युक्त सभी खानदान के वंशज डकरेई देवता को अपना भाग विधि-विधान पूर्वक अर्पित करते हैं। जागरा उत्सव में भी देवता महाराज डकरेई और नाग देवता के भाग तथा पूजा-अर्चना के विधि-विधान सुनिश्चित है।

झगटा खूँद के दो वंश मिंगणाईक और मिनोली प्रसिद्ध हैं। मिंगणाईक खानदान में गोडू, धींगडू, कानासिंह, दिलिया, कौलराम, देवी सिंह, राईसिंह, मोहीराम तथा देविया प्रतिष्ठित पूर्व पुरुष थे। इसी प्रकार मिनोली खानदान में चुरु, झांईया, गियारू, लायकराम, भगतराम आदि प्रसिद्ध पूर्व पुरुष थे। ये सभी देवता के कारदार रहे हैं। प्रिम्टा खानदान में कर्मसिंह, हरिसिंह, देवेन्द्र सिंह, वीरेन्द्रसिंह तथा अमर सिंह आदि प्रतिष्ठित पूर्वपुरुष देवता के कारजों में सदैव तत्पर रहे हैं। पबटा खानदान में पामू, कानासिंह, बुद्धिसिंह, राईसिंह, कर्मू, मोहनसिंह और रखाराम आदि देवता महाराज डकरेई के प्रतिष्ठित सेवादार थे। वर्तमान में संतराम आदि इस कार्य को देखते हैं। इसी प्रकार धाबटा खानदान के झुरिया और शिबू एवं खणीअटू वंश के धीरजू आदि भी देवता के कारदार थे। प्रिम्टा वंश का युवा यशजीत अपने जीवनकाल में देवता महाराज डकरेई का अनन्य भक्त था। वर्तमान में इन वंशजों के सेवादार देवता के सभी कारजों में सम्मिलत होते हैं।

सन्दर्भ :

क) पुरातात्विक सामग्री

१. मन्दिर, मूर्तियाँ, साज-सज्जा की सामग्री, वाद्ययन्त्र, देवल, प्रस्तर मूर्तियाँ, जल बावड़ी, मन्दिर में उत्कीर्ण मूर्तियाँ आदि ।

ख) लोक इतिहास सामग्री संकलन

२. स्व. पण्डित गियारू राम, ग्राम डंडकांल्डी, जगराह, बम्टा, तहसील चौपाल, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश (देवता का इतिहास और गाथा संकलन)

३. स्व. पण्डित दौत, ग्राम पुजारली, बम्टा, तहसील चौपाल, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश (श्रौत परम्परागत जागरा का संकलन)

४. स्व. पण्डित कांसिया, ग्राम जगराह, बम्टा, चौपाल, शिमला, हिमाचल प्रदेश (जागरा संकलन)

५. स्व. पण्डित रामूराम, ग्राम डंडकाल्डी, जगराह, बम्टा, तहसील चौपाल, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश (श्रौत सामग्री का संकलन)

६. श्री देवेन्द्र सिंह प्रिम्टा, ग्राम बम्टा, तहसील चौपाल, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश (शुकासौर जातर का इतिहास)

७. श्री सुरेन्द्र सिंह भण्डारी, ग्राम ममवी, बम्टा, चौपाल, शिमला, हिमाचल प्रदेश (देवता महाराज और ममवी ग्राम का इतिहास)

८. श्री बेलीराम, ग्राम पुजारली, बम्टा, चौपाल, शिमला, हिमाचल प्रदेश (पूजाविधान तथा गाँव का इतिहास)

९. श्री सालिगराम, ग्राम डंडकांल्डी, बम्टा, चौपाल, शिमला, हिमाचल प्रदेश (गांव के वंशजों का श्रौत इतिहास ।

१०. श्री रमेश कुमार, गांव राऊतन, बम्टा, चौपाल, शिमला, हिमाचल प्रदेश (भजरोठ वंश का इतिहास)

११. भगतराम एवं लायकराम नामटा, ग्राम भाबर, बम्टा, चौपाल, शिमला, हिमाचल प्रदेश (देवता महाराज नाग का श्रौत विवरण)

१२. डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, जागरा ।

अध्यक्ष,
डॉ. वाई.एस.परमार पीठ
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला (हि.प्र.)

श्रद्धाजंलि

वीरव्रती शेर सिंह

डॉ. चेतराम गर्ग

श्री राम प्रकाश शर्मा (शेर सिंह)
१३ जनवरी, १९३७ - ३ फरवरी, २०२१

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निष्ठावान् कार्यकर्त्ता स्वर्गीय रामप्रकाश संघ के महत्त्वपूर्ण दायित्वों एवं अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय सचिव रहे। वे समाज में अधिकांश शेर सिंह के नाम से जाने जाते थे। माननीय ठाकुर रामसिंह जी ने उन्हें इतिहास संकलन योजना का कार्य सौंपा जिसे उन्होंने पूर्णनिष्ठा के साथ अपने जीवन की अन्तिम सांस तक निभाया। उन्होंने इतिहास के जानकार विद्वानों को जोड़ने में अहम भूमिका निभाई। संगठन कार्यरूपी अपने ध्येयपथ पर निरन्तर अग्रसर रहते हुए उन्होंने उत्तर क्षेत्र के क्षेत्रीय संगठन मन्त्री से लेकर अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना की राष्ट्रीय कार्यकारणी के सचिव तक के विभिन्न दायित्वों का निर्वहन किया। शेर सिंह जी से मेरा परिचय इतिहास शोध संस्थान नेरी में आया। वे अक्सर श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी से मिलने शोध संस्थान आते रहते थे। ३ फरवरी, २०२१ को उनके देहवसान का समाचार मिला तो मैं स्तब्ध रह गया।

स्वर्गीय शेर सिंह का जन्म कलियुगाब्द ५०३७, विक्रमी संवत् १९९४ (१३ जनवरी, १९३७) को ग्राम जोह तहसील अम्ब जिला ऊना हिमाचल प्रदेश में एक किसान परिवार में हुआ था। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा दौलतपुर चौक स्कूल से प्राप्त की। जिसके लिए उन्हें प्रतिदिन १५ कि.मी. का पैदल रास्ता तय करना पड़ता था। जब वे पांचवी कक्षा में पढ़ते थे तभी से ही वे संघ की शाखा में जाना प्रारम्भ कर दिया था। उन्हें सेना में जाने का शौक पैदा हो गया और दसवीं की पढ़ाई पूरी करते ही वे सेना में भर्ती हो गए। सेना में रहते हुए उन्हें १९६२ व १९६५ के युद्धों में भाग लिया था। युद्ध के दौरान उनकी दोनों टांगों में गोलियां लगी थी तथा बाजू और कोहनियों में भी गहरी चोटें आई थी। इसी कारण सेना से सेवानिवृत होकर पुनः भारत संचार निगम में पुनः सरकारी सेवा में चले गए। सेना से आज जाने के कारण उन्हें दोबारा संघ कार्य की ओर ध्यान देने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

शेर सिंह ने १९७५ में लगे आपातकाल में भूमिगत रहते हुए सक्रियता से काम किया था। माननीय ठाकुर राम सिंह जी भी भूमिगत रह कर काम कर रहे थे। उसी समय शेर सिंह की घनिष्ठता ठाकुर जी से बनी। आपातकाल का समय ऐसा था कि चारों ओर से चौकन्ने रहना पड़ता था। सरकारी नौकरी में रहते हुए कार्य और कठिन था। यदि सरकार को यह पता चल जाता कि रामप्रकाश राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का काम भूमिगत ढंग से कर रहे हैं तो एक तो नौकरी चली जाती और दूसरे परिवार को

परेशानियों का सामना करना पड़ सकता था। पुलिस घर पर आकर लगातार जानकारी लेने का काम करती रहती थी। शेरसिंह ने इस काम को ऐसी समझदारी से किया कि पुलिस कभी उन पर शक ही नहीं कर पाई कि वे संघ के कार्य में सक्रियता से काम कर रहे हैं। शेर सिंह नाम भी उन्हें आपातकाल के दौरान ही मिला था जो बाद में लोग उन्हें इसी नाम से पुकारने लगे। पुलिस रामप्रकाश और शेर सिंह को समझ ही नहीं पाती थी।

सन् १९९५ में वे सरकारी सेवा से निवृत्त होकर पंचकूला में अपने निजी निवास स्थान पर आ गए। श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी अब अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना का काम देखने लगे थे इसलिए उन्होंने १९८८ में शेर सिंह को इतिहास संकलन योजना के संगठनात्मक कार्य का दायित्त्व सौंपा। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना में उन्होंने एक जीवनव्रती वानप्रस्थी कार्यकर्ता के रूप में काम करना प्रारम्भ किया। जिसमें सर्वप्रथम इतिहास विषय में रूचि रखने वाले अध्यापकों, प्राध्यापकों की स्थान-स्थान पर समितियां बनाने का काम किया। उनके द्वारा प्रवास देशभर में प्रवास करके लोगों को जोडना, इतिहास के प्राध्यापकों को खोजना, उन्हें इतिहास के महत्त्व को समझाना, इतिहास में जो भ्रांतियां फैलाई गई हैं, उसके बारे में अवगत करवाना, ऐसी पुस्तकें देना जिन में इन भ्रान्तियों को दूर कर सही जानकारी प्रदान की गई हो । उनका शोधपत्र लिखवाना, संगोष्ठी करवाना, पुस्तकें लिखने के लिये प्रेरित करना, बैठक लेना, योजना बनवाना आदि काम रहता था। एक मास के तीस दिनों में वे लगभग १५-२० दिन प्रवास पर ही रहते थे।

ठाकुर रामसिंह जी २००३ में इतिहास संकलन योजना के कार्य से मुक्त होकर इतिहास शोध संस्थान नेरी के कार्य की ओर अपना ध्यान देने लगे थे। शेर सिंह के पास उत्तर क्षेत्र के संगठन मन्त्री का दायित्व होने के कारण वे नेरी में नियमित रूप में आते रहते थे। सारे देश में इतिहास संकलन योजना का कार्य कैसा चल रहा है इसकी पूरी जानकारी देते और संस्थान में ही रूकते थे।

वे फरवरी २०१७ में वे थोड़ा थोड़ा विस्मृति की अवस्था में रहने लगे। अब यह समस्या और बढ़ने लगी। उसके बाद उनका प्रवास थोड़ा कम होने लगा। शेर सिंह द्वारा समाज को इतिहास के कार्य हेतु प्रेरित करने के लिए दिए गए जीवन के बीस वर्ष राष्ट्र जागरण में अतुलनीय योगदान है। २० जनवरी, २०२१ को अन्न-जल त्याग कर कलियुगाब्द ५१२२, विक्रमी संवत् २०७७ (३ फरवरी, २०२१) को उन्होंने इस नश्वर देह को त्यागकर गोलोक प्रस्थान किया। ऐसे दिव्य आत्मा का जाना राष्ट्र के लिए अपूर्णीय क्षति है। शोध संस्थान परिवार उस दिव्य आत्मा की शान्ति की कामना और परिवारजनों को संबल प्राप्त हो ऐसी परम पिता परमेश्वर से कामना करता है।

निदेशक
इतिहास शोध संस्थान नेरी
हमीरपुर (हि.प्र.)

पुस्तक समीक्षा

दामोदर गौतम

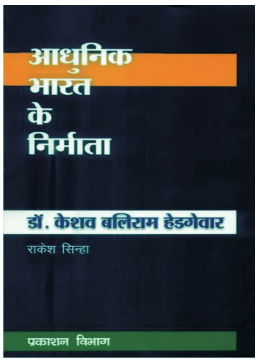

आधुनिक भारत के निर्माता
डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार
लेखक : राकेश सिन्हा
प्रकाशक : सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय भारत सरकार,
पृ.-२४६, पांचवा संस्करण २०१८,
मूल्य-१४०/-

चर्चित स्तंभकार तथा राजनीतिक विशेषज्ञ एवं दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र के प्राध्यापक राकेश सिन्हा द्वारा लिखी गई यह पुस्तक न केवल डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार के कर्मठ व्यक्तित्त्व को दर्शाती है, बल्कि उनके जीवन से सम्बन्धित ऐसी जानकारियां भी देती है जो अभी तक अल्पज्ञात थी। पुस्तक उस महान् व्यक्तित्व और चिन्तक के लिए समर्पित है जो कि पिछले दिनों पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी द्वारा संघ के कार्यक्रम में जाने का न्यौता स्वीकार करने और डॉ. हेडगेवार के निवास का दौरा करने पर विजिटर बुक में लिखे शब्द – ''मैं आज यहां भारत मां के महान सपूत डॉ. के. बी. हेडगेवार को श्रद्धांजलि देने आया हूं'' के कारण काफी चर्चा का विषय बना। डॉ. हेडगेवार कर्मठ सत्यनिष्ठ और राष्ट्रवादी होने के साथ-साथ एक स्वतंत्र चेता तथा भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे। २१ अध्यायों में प्रस्तुत की गई इस शोध पुस्तक में हेडगेवार की संपूर्ण जीवन यात्रा को दर्शाया गया है। तेजस्वी बालक का जन्म, शिक्षा, हेडगेवार के कुल का इतिहास और मात्र ८ वर्ष की उम्र में देशभक्ति का भाव प्रस्फुटित होने जैसी घटनाएं, इस पुस्तक के प्रथम अध्याय को बहुत ही रोचक बनाती है। पुस्तक में उस घटना का सूक्ष्म वर्णन किया गया है जिसमें डॉ. केशव द्वारा मात्र ८ वर्ष की उम्र में ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया के राज्यारोहण के ६० साल पूरे होने पर भारत में जश्न मनाए जाने की मिठाई फैंक देना, बचपन से ही उनकी देशभक्ति को सहसा ही बताती है जो आने वाले वर्षों में दूसरी कई घटनाओं के रूप में प्रस्फुटित होने वाली थीं। लेखक ने हेडगेवार द्वारा नेशनल मेडिकल कॉलेज की पढ़ाई के दौरान देश में चलने वाली क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेने संबंधी विभिन्न घटनाओं का इस पुस्तक में वर्णन किया है। डॉ. केशव अपने मेडिकल के अध्ययन के साथ-साथ देशभक्ति में भी अग्रणी थे। उनके द्वारा बंगाल में अनुशीलन समिति से जुड़ना उनकी देशभक्ति का एक अनूठा उदाहरण था। ये वे घटनाएं है जो हमारे युवाओं को अध्ययन के साथ-साथ देश प्रेम और राष्ट्रभक्ति की ओर प्रेरित करने का मार्ग प्रशस्त करती हैं। पुस्तक के आत्मदर्शन वाले अध्याय में लेखक द्वारा हेडगेवार के बताए गए देशभक्ति के १० सूत्रों का वर्णन किया है जो हमारे युवाओं को राष्ट्र चिंतन, राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति और आत्म स्वतंत्रता की ओर प्रेरित करते हैं।

पुस्तक में वर्णित हेडगेवार से संबंधित सभी जानकारियां जिन संदर्भ ग्रंथों और सूचियों से ली गई है वे भी इस पुस्तक की गहनता तथा वैज्ञानिकता को सिद्ध करती हैं। पुस्तक में डॉक्टर हेडगेवार का

बाल गंगाधर तिलक से प्रेरित होना तथा कांग्रेस द्वारा चलाए गए स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेना और उसके उपरान्त राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसी संस्था की नींव रखना, सभी घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। पुस्तक में डॉ. हेडगेवार के जीवन चरित्र, चिंतन, विचार और भ्रांतियों को दूर करना और उनका मूल्यांकन करने की लेखक द्वारा वैज्ञानिक और अनुसंधाननात्मक कोशिश की गई है।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलाए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन में संघ के स्वयंसेवकों द्वारा भाग लेने सम्बन्धी संदर्भ डॉक्टर मुंजे की डायरी से लेना पुस्तक की विश्वसनीयता को बढ़ाता है। लेखक ने पुसद सत्याग्रह तथा इसी के क्रम में दूसरा सत्याग्रह जिसमें की हेडगेवार को जंगल कानून तोड़ने पर तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया, पुस्तक में सूक्ष्म और सटीक रूप में वर्णित है। यह वह सत्याग्रह था जो कि डॉ. हेडगेवार के मध्य प्रांत के सविनय अवज्ञा आंदोलन में सर्वाधिक सफल कार्यक्रमों में से एक था।

लेखक ने पुस्तक में डॉ. हेडगेवार की गिरफ्तारी के दौरान रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर बने मंच पर से जनसमुदाय को संबोधित करने वाले छोटे से किंतु उत्साहवर्धक भाषण का उल्लेख किया है। जिसमें डॉ. हेडगेवार ने कहा था कि – ''एक दशक पूर्व अंग्रेजों के खिलाफ हमने असहयोग आंदोलन शुरू किया था अब हम अपनी बेसिक कानूनों की धज्जियां उड़ा रहे हैं। सरकार को गलतफहमी है कि दमन से जनता डर जाएगी। हिंदुस्तान का पूरा इतिहास ही धर्म एवं अधर्म के बीच लड़ाई का है। हमें अंग्रेजों से वैधानिकता का पाठ नहीं पढ़ना है जिसे वे कानून कहते हैं वह हमारी बेड़ियां हैं। जिसे वे अशांति कहते हैं वह आगे आने वाले समय की पूर्व सूचना मात्र है जिसे वे पहचान नहीं पा रहे हैं। समझौता एवं वार्ता साम्राज्यवादी समस्या का निदान नहीं है। जिन लोगों ने धोखे एवं खेल से पूरे राष्ट्र को बल प्रयोग से अपने अधीनस्थ कर रखा है, वे राक्षसी शक्ति के प्रतीक हैं। यदि वे समय रहते हिंदुस्तान से वापस नहीं चले जाते हैं तो जैसे माता सीता का अपहरण करने वाले राक्षस का विनाश हुआ था वैसा ही विनाश अंग्रेजों का भी होगा।'' उस समय उनके ओजपूर्ण भाषण ने पूरे वातावरण को उग्र राष्ट्रवाद के रंग में रंग दिया था और वंदे मातरम् के जय घोष ने उन्हें विदाई दी।

१९२० से १९४० तक हिंदू महासभा, कांग्रेस और संघ के बीच रहे संबंधों का पुस्तक में सूक्ष्म एवं सटीक विवेचन किया गया है। हिंदू समाज में व्याप्त विषमताओं को दूर करना और उनके प्रयासों को भी पुस्तक में संदर्भित जानकारी दी गई है। स्वामी विवेकानंद के समान उनके द्वारा अल्प जीवन में किया गया कार्य राष्ट्रीय पुनर्जागरण के पर्याय के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। ऐसे व्यक्तियों का मूल्यांकन हमेशा अधूरा ही रहता है और इतिहास के घटनाक्रम में ही उनकी पूर्णता और प्रबलता स्थापित होती है। डॉ. हेडगेवार जैसे महापुरुषों पर लिखी गई पुस्तक अपने आप में लेखक द्वारा एक कर्मठ प्रयास है। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं कि डॉ. हेडगेवार के चिंतन को किसी एक पुस्तक में समाहित किया जा सके। परंतु लेखक ने अपने अथक एवं अन्वेषणीय प्रयासों से इस पुस्तक के माध्यम से जनसाधारण एवं समाज वैज्ञानिकों के लिए राष्ट्रीय एवं सामाजिक चिन्तन के नए आयाम स्थापित करने की कोशिश की है।

सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र,
राजकीय महाविद्यालय झण्डूता,
जिला - बिलासपुर (हि.प्र.)

पुस्तक समीक्षा

प्रो. पूरन चन्द टंडन

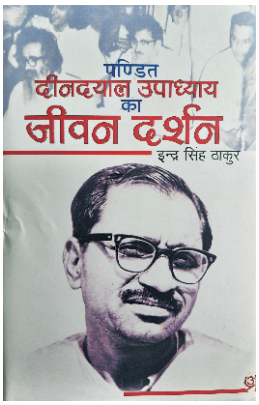

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का जीवन दर्शन
लेखक : डॉ. इन्द्रसिंह ठाकुर
प्रकशक : अनंग प्रकाशन,
पृ.-१३६, मूल्य-४६५/-

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का जीवन दर्शन पुस्तक हिन्दी भाषा साहित्य और इतिहास के लेखक डॉ. इन्द्रसिंह ठाकुर द्वारा विशेषकर देश के भारतीय वांग्मय साहित्य, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद तथा इतिहास में रूचि रखने वाले शिक्षार्थी, शोधार्थी और अध्येताओं को ध्यान में रखकर लिखी गई है। इन्द्रसिंह ठाकुर की यह पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के चिन्तन को लेकर तीसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। लगभग चौबीस बर्षों के अनवरत अध्ययन उपरान्त भारतीय संस्कृति और राष्ट्रवाद सहित पण्डित दीनदयाल का एकात्म मानववाद की महीन शोध परक यात्रा के उपरान्त यह ग्रन्थ उन समस्त प्रतिमानों को समक्ष रखती है जिसकी प्रासंगिकता आज के मानवीय समाज को श्रेष्ठ पाथेय देती है। भारत की जीवन दृष्टि और यहाँ का ज्ञानपरक प्राचीन वांग्मय जिसकी थाह लेना कल्पनातीत है ऐसे विषयों को भारतीय इतिहास और सांस्कृतिक, साहित्यिक आधार पर ला खड़ा करना लेखक का मूल उद्देश्य इस पुस्तक में रहा है।

पुस्तक का पहला अध्याय ''पण्डित दीनदयाल उपाध्याय'' जीवन यात्रा से सम्बन्ध है जिसमें लेखक ने २५ सितम्बर १९१६ ई. से लेकर ११ फरवरी १९६८ ई. तक की जीवन यात्रा सहित इनके बाल्यकाल की वेदनामयी जीवन यात्रा जो एक अनाथ बालक की रही है ननिहाल में अपने जीवन का निर्वाह करना, स्नातक और परास्नातक की परीक्षाओं में स्वर्ण पदक प्राप्त करना जैसे महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को वर्णित किया है। इसी अध्याय में १९३७ के वर्ष राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़कर मां भारती के लिए अपना जीवन समर्पित कर देना जैसे विषयों को भी रेखांकित किया गया है।

दूसरा अध्याय ''भारतीय संस्कृति और एकात्ममानववाद'' जैसे विषय को समक्ष रखता है। लेखक ने यहाँ भारतीय संस्कृति क्या है? इसकी परिभाषा बड़े मनोयोग से दी है। सूत्र रूप संस्कृति संस्कार का द्योतन करती है जो जीवन का अभ्यान्तरिक पक्ष होता है बाहरी नहीं। इसी पक्ष को विस्तार देते हुए लेखक ने पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी के एकात्ममानववाद को विश्लेषित करते हुए उन्हीं के चिन्तन द्वारा शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा जैसे तत्त्वों का विवेचन किया है। जिसके अन्तर्गत जीवन के अस्तित्व को सात मण्डलों जैसे व्यक्ति, परिवार, समुदाय, राष्ट्र, मानवता, विश्व और परमेष्टि जैसे प्रतिमानों में रखकर भारतीय दृष्टिकोण के साथ पश्चिम के विचार को भी समान्तर अध्ययन के माध्यम से पाठकीय समाज के समक्ष रखा है, लेखक इस अध्याय के माध्यम से यह कहने का प्रयत्न करता है कि पश्चिम का विचार व्यक्ति को अपनी सीमाओं में रखता है जबकि भारतीय चिन्तन में व्यक्ति का क्षेत्र विराट है।

''सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और पण्डित दीनदयाल उपाध्याय'' नामक तृतीय अध्याय में लेखक ने पण्डित जी के चिन्तन को आधार मानकर यह वर्णित किया है कि हमारे पारम्परिक राष्ट्र चिन्तन में राजनीति की भूमिका गौण है, उसमें व्यापक अर्थ में धर्म और संस्कृति की प्रधानता है। अतः उसकी परिणति हिंसक आक्रामकता में न होकर उदार, सहिष्णु वैश्विकता में होती है।

''भारत राष्ट्र'' नामक चतुर्थ अध्याय में लेखक ने राष्ट्र राज्य और देश को अलग-अलग आधार पर रखकर यह बतलाने की चेष्टा की है कि राष्ट्र हमारी चित्ती है जिससे देश में मानवीय चेतना जागृत होती है चेनता शून्यता निष्प्राणता का प्रतीक है। ''परम वैभव नेतु मेतत् स्वराष्ट्रम'' जैसे सूत्र को सामने रखते हुए लेखक की दृष्टि परम वैभव और सर्वांगीण उन्नत्ति को वर्णित करने की रही है।

पांचवां 'अध्याय पण्डित दीनदयाल उपाध्याय और शिक्षा का आदर्श' से सम्बन्धित है। इस विश्लेषण में डॉ. इन्द्रसिंह ठाकुर ने शिक्षा में भारतीय आदर्श के मानदण्ड को प्रमुखता से चरितार्थ किया है। लेखक ने यहाँ समास शैली में व्याख्या की है कि शिक्षा कुछ विषयों के बारे में सूचना देना भर नहीं है। शिक्षा का भारतीय आदर्श है विद्यार्थी के मन को उसके धर्म के अनुसार विकसित होने देना। लेखक ने बड़े मनोयोग से कहा है कि धर्म का अर्थ है जो हमारे अन्दर विशेष गुण निहित है, उसे जानना और फिर उसी के आधार पर मार्गदर्शन। शिक्षक को वही खोजना है तभी चित्त, मन, बुद्धि तथा अन्तः प्रज्ञा का उन्नयन होगा। इन्हीं आदर्शों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० का क्रियान्वयन हो रहा है।

छठा और सातवाँ अध्याय ''पण्डित दीनदयाल उपाध्याय विचार और अवधारणा सहित श्रद्धांजलि'' जैसे बिन्दुओं को समक्ष रखता है। लेखक ने यहाँ इस महान चिन्तक के उन विचारों को ऐतिहासिक आधार देकर शब्दांकन किया है कि 'हमारा सनातन धर्म ही हमारे लिए राष्ट्रीयता है। जब सनातन धर्म की हानि होती है तब राष्ट्र की अवनति होती है और सनातन धर्म का विनाश यदि सम्भव होता तो धर्म के साथ राष्ट्र का भी विनाश हो गया होता। इसलिए भारत राष्ट्र अखण्ड, अटूट, अविभाज्य है। इसी अध्याय में भारत रत्न पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी द्वारा दी गयी श्रद्धांजलि के जो वाक्य १२ फरवरी , १९६८ ई. को लोकसभा के पटल पर रखें थे उन्हें विस्तार से अंकित किया गया है।

समग्र रूप में जब इस पुस्तक की समीक्षा की जाए तो लेखक ने अपनी मेधा द्वारा भारतवर्ष के इस महान चिन्तक को जिस रूप में पुस्तक के माध्यम से पाठकों के सामने रखा है वहां शोध प्रविधि के प्रतिमानों को ध्यान में रखकर प्राथमिक स्रोतों की सहायता से अपनी लेखकीय यात्रा सफलतापूर्वक तय की है किन्तु ऐतिहासिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए डॉ. इन्द्रसिंह ठाकुर ने 'विधायस्य धर्मस्य संरक्षणम्' जैसे विषय को वर्णित किया होता तो अध्येताओं का पाथेय और प्रशस्त होता। 'इदं राष्ट्राय इदं न मम', व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समाज, 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' उक्त विषयों की विमर्श युक्त अपेक्षा भी लेखक से है। जिस रूपरेखा के साथ पुस्तक तैयार हुई है पाठकों के लिए नवीन पथ का संचार अवश्य करेगी यह मेरा मन्तव्य है।

आचार्य हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ध्येय पथ

गतिविधियां

ऋषि भारद्वाज

श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह १०६वां राज्यस्तरीय जयंती समारोह

वीरव्रती यशस्वी इतिहास पुरुष ठाकुर रामसिंह जी के (१०६वें) जयन्ती समारोह का आयोजन इतिहास शोध संस्थान नेरी तथा हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला के संयुक्त तत्वावधान में फाल्गुन प्रविष्टे ३-४ विक्रमी संवत् २०७७, कलियुगाब्द ५१२२, तदनुसार १४-१५ फरवरी २०२१ को शोध संस्थान नेरी में सम्पन्न हुआ। इस दो दिवसीय आयोजन में राष्ट्रीय परिसंवाद विषय **स्वतन्त्रता संग्राम में हिमाचल प्रदेश का योगदान** सांस्कृतिक संध्या, हवन-यज्ञ तथा ठाकुर रामसिंह जयन्ती प्रमुख कार्यक्रम रहे। समारोह के प्रथम दिवस में आयोजित राष्ट्रीय परिसंवाद के मुख्यातिथि हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री प्रो. प्रेम कुमार धूमल, विशिष्टातिथि आचार्य सिकंदर कुमार, कुलपति हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला तथा कार्यक्रम के अध्यक्ष प्रो. कुलदीप चंद अग्निहोत्री, कुलपति हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला मुख्य रूप से उपस्थित रहे।

दीप प्रज्वलन एवं माल्यार्पण के साथ विधिवत् रूप से कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। श्री जगवीर चंदेल ने मंचासीन अतिथियों का परिचय करवाया। महासचिव भूमिदत्त शर्मा ने संस्थान का प्रतिवेदन सबके समक्ष प्रस्तुत किया। तत्पश्चात शोध संस्थान से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक अनुसन्धान पत्रिका 'इतिहास दिवाकर' के पहले पीयर रिव्युड अंक का विमोचन किया गया।

मुख्यातिथि प्रो. प्रेम कुमार धूमल ने कहा ''मैं इस भूमि को नमन करता हूँ जिसे ठाकुर रामसिंह जी ने अपने अथक परिश्रम से तपोभूमि बनाया।'' उन्होंने इस अवसर पर अपना संस्मरण सुनाते हुए बताया कि 'सौभाग्य से एक बार कुल्लू दशहरे के समापन समारोह में ठाकुर रामसिंह जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। ठाकुर जी ने कहा कि आज मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। अतः आज संगोष्ठी में आपको विषय रखना है। मैंने ठाकुर जी से निवेदन किया कि मैं इतिहास को अच्छे से नहीं जानता हूं इसलिए मैं विषय रखने में असमर्थ हूं।' ठाकुर जी बोले– ''इतिहास में जिन लोगों की रुचि नहीं है ऐसे लोगों में इतिहास के प्रति रुचि पैदा करना ही हमारा ध्येयपथ है। यदि किसी भी राष्ट्र के नागरिक अपने स्वर्णिम इतिहास से अनभिज्ञ रहते हैं तो उस राष्ट्र का विकास कभी नहीं हो सकता। आज भारत में जो मिथ्य इतिहास पढ़ाया जा रहा है कि आर्य बाहर से आए इस तथ्य को तर्क सहित समाज के सामने प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। आर्य भारत के ही मूल निवासी हैं और आर्य का शाब्दिक अर्थ होता है श्रेष्ठ।'' ठाकुर जी की यह इतिहास दृष्टि अपने आप में अत्यन्त गंभीर एवं प्रेरणाप्रद है।

अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्रो. कुलदीप चंद अग्निहोत्री ने कहा कि 'बहुत कम लोग होते हैं जिनमें

प्रगतिशील विचार होते हैं। ठाकुर जी के दिमाग में हमेशा ऐसे प्रगतिशील विचार चलते रहते थे। वे हमेशा सोचते रहते थे कि अनर्गल तर्कों को गढ़कर लिखे गए इतिहास के मिथ्य तथ्यों को कैसे सत्यनिष्ठ तर्कों से काटकर भारत के सच्चे इतिहास को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। शोध संस्थान के सम्बन्ध में विचार रखते हुए उन्होंने कहा कि ठाकुर रामसिंह जी जिस दिशा में सोचते थे श्री चेतराम जी के निर्देशन में यह शोध संस्थान उस दिशा में कार्य पथ पर अग्रसर है।

डॉ. अग्निहोत्री ने कहा कि आजादी के आन्दोलन में चार समानांतर धाराएँ चल रही थी। जिनका मकसद एक ही था भारत से विदेशी सत्ता को उखाड़ना। भारत में अनेक विदेशी शक्तियां आई और गई किन्तु अंग्रेज ऐसे थे जो यहाँ डेरा डाल के बैठ गए और भारत के बहुत बड़े भाग पर अपना कब्जा भी कर लिया। किन्तु जब उन्होंने भारत से बाहर निकलने के लिए कहा गया तो उन्होंने पूछा तुम कौन हो? भारतीयों ने कहा हम इस देश के नागरिक हैं। तुम विदेशी हो, बाहर निकलो। अंग्रेजों ने आर्यन थ्योरी गढ़ कर कहा 'तुम इस देश के मूल निवासी नहीं हो तुम तो विदेशी हो। तुम लोगों ने यहाँ के मूल निवासियों को मारा भगाया है। इसलिए तुम्हें हमें यहाँ से बाहर निकालने का कोई हक नहीं है। हमारी तरह तुम भी विदेशी हो।' अग्निहोत्री ने कहा कि अगर आज़ादी की लड़ाई को आगे बढ़ाना था तो इस आरोप का उत्तर देना बहुत जरुरी था। भारतीय कांग्रेस ने इस आरोप का उत्तर नहीं दिया बल्कि इस आरोप को स्वीकार करने वाली पहली धारा बनी। जिसमें नेहरु कांग्रेस के बड़े नेता थे और वही अपनी किताब 'भारत की खोज' में लिखते हैं कि 'आर्य भारत में बाहर से आए थे' जब कांग्रेस ने इस आरोप को स्वीकृति दे दी तब यह आजादी की लड़ाई नहीं बल्कि सत्ता प्राप्ति की लड़ाई मात्र रह गई थी।

१८५७ में हिंदुस्तान के लोगों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भयंकर लड़ाई लड़ी। इस आन्दोलन ने भारतीयों में नए उत्साह का संचार किया कि हम विदेशी सत्ता को उखाड़ सकते हैं। किन्तु अंग्रेजों ने कहा यह कोई आजादी की लड़ाई नहीं बल्कि छोटा-मोटा विद्रोह था। जिसे उर्दू वालों ने अनुवाद कर 'गदर' कहा और हिंदी वालों ने 'क्रांति' कहा। कांग्रेस के जितने भी विद्वान हुए उन्होंने भी इसे क्रांति या गदर ही कहा। किन्तु इस विचारधारा के विपरीत दूसरी धारा के भीमराव आम्बेडकर और वीर सावरकर ने इसे गद्दर या क्रान्ति न कहकर के भारत की आज़ादी की पहली लड़ाई कहा। वीर सावरकर ने अपनी किताब (जिसे छपने से पहले ही प्रतिबंधित कर दिया था) में लिखा कि '१८५७ का आन्दोलन गदर या क्रांति नहीं बल्कि भारत की आजादी की पहली लड़ाई थी।' कांग्रेस को इन दोनों आरोपों का उत्तर देना चाहिए था किन्तु उसने समझौता कर लिया और उसका खंडन नहीं किया। जिन दो लोगों ने इसका उत्तर दिया उनको कांग्रेस ने अंग्रेजों का पिठ्ठू कहा। १८५७ में और उसके बाद भारतीयों ने भी गोली का जवाव गोली से देना शुरू कर दिया। अंग्रेज इससे घबरा गए उन्हें लगा ऐसे तो बात नहीं बनेगी। उनका मानना था कि भारतीय बन्दूक छोड़कर उनसे समझौता कर लें ताकि हमारे राज को हिंदुस्तान में स्वीकृति मिल सके और कांग्रेस ने यही काम किया। कांग्रेस ही थी जिसने अंग्रेजी शासन को भारत में वैधता प्रदान की।

जब कांग्रेस ने अंग्रेजी शासन को वैधता प्रदान की इससे एक तीसरी विचारधारा का उदय हुआ जिसे शुद्ध क्रांतिकारी वर्ग कहा जाता है। जिसमें चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह जैसे लोग थे जो बन्दूक का

जवाव बन्दूक से ही देना चाहते थे। उन्होंने अंग्रेजो के राज को मान्यता देने से ही इंकार कर दिया। चौथी धारा में सुभाषचंद्र बोस थे। जिसने अंग्रेजो के विरुद्ध उसके शत्रुओं की मदद से आज़ाद हिंद फौज खड़ी कर दी। किन्तु कांग्रेस ने इसका प्रत्यक्ष विरोध किया। पंडित नेहरु ने कहा कि यदि सुभाषचंद्र बोस बन्दूक लेकर भारत आएगा तो मैं पहला व्यक्ति हूंगा जो उसका सामना करेगा। उस समय यह चार समानांतर धाराएँ चल रही थी। चाहिए तो यह था कि उस समय यह सभी धाराएँ एक दूसरे से मिलकर काम करती किन्तु सभी ने अलग-अलग रास्ता चुना। आज यह हो रहा है कि आज़ादी के आन्दोलन में केवल कांग्रेस के प्रयत्नों को ही महिमामंडित किया जा रहा है। आज़ादी के बाद कांग्रेस ने सभी आंदोलनों का मूल्यांकन करने की बजाए इनकी निन्दा करना शुरू कर दी। आज आज़ादी के ७५ वर्ष पर हमें आज़ादी की लड़ाई को सही मायने में मूल्यांकन करना चाहिए और खासकर अंग्रेजों ने जो आरोप लगाए थे उनका उत्तर देते हुए हमें सही दिशा में इतिहास का पुनर्लेखन करना चाहिए। अगर इस दिशा में हमें सफलता मिलती है तो मैं समझूंगा हमारे प्रयास सफल हुए।

विशिष्टातिथि आचार्य सिकंदर कुमार ने कहा ''ठाकुर रामसिंह जी का योगदान देश व प्रदेश के लिए बहुत बड़ा रहा है। आदिकाल से ही भारतीय सभ्यता के उत्थान, उसमे समरता और समानता का भाव पैदा करने में बहुत से महापुरुषों का योगदान रहा है। उन्हीं महापुरुषों में एक थे ठाकुर रामसिंह उनका हमेशा से यह प्रयास रहा कि भारत के इतिहास के साथ विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा जो खिलवाड़ किया गया है उसे सही करके देशवासियों के सामने लाया जाए। इतिहास शोध संस्थान इस कार्य को बखूबी कर रहा है। ठाकुर जी की जयंती पर उन्हें यही सच्ची श्रद्धांजलि है।''

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, निदेशक वैचारिक पक्ष शोध संस्थान नेरी द्वारा बीज वक्तव्य में कहा कि आजादी से पहले प्रदेश का जनमानस दोहरी गुलामी का दंश भुगत रहा था। एक तरफ देशज रियासतों की गुलामी थी और दूसरी और ब्रिटिश शासन का शिकंजा था। १८५७ की क्रांति में प्रदेश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। हिमाचल के ५० देशभक्त फांसी पर चढ़े, ३० के लगभग देशभक्तों को देश निकाला दिया गया, ५०० के लगभग क्रांतिकारी जेलों में बंद किए गए। हिमाचल में १८५७ की क्रांति के महान नायक सूबेदार भीम सिंह, राम प्रताप वैरागी, वीर सिंह, युवराज प्रताप सिंह, केशव राम इत्यादि प्रमुख थे। उन्होंने १८५७ की क्रांति में हिमाचल के ११ महत्त्वपूर्ण स्थलों का भी जिक्र किया। उन्होंने बताया कि १८५८ से १९४७ के बीच प्रदेश में बहुत सारे कृषक आन्दोलन हुए जिनमें बुशहर का दूम आन्दोलन, जुग्गा रियासत में जन संघर्ष, सुकेत रियासत में जन आन्दोलन, गढ़ चौरासी घटना, बाघल आन्दोलन, नालागढ़ में जन आन्दोलन, धामी गोलीकांड, प्रजामंडल आन्दोलन, पझौता आन्दोलन इत्यादि प्रमुख आन्दोलन थे।

शोध संस्थान के निदेशक श्री चेतराम गर्ग ने कहा कि आज़ादी के ७५ वर्ष के उपलक्ष्य पर जो इतिहास लेखन का कार्य किया जाना है उसमें चार बिंदु प्रमुख हैं – व्यक्ति, स्थान, संस्थान और घटनाएँ। इन्हीं को ध्यान में रखते हुए हमें इतिहास पुनर्लेखन का काम करना है। शोध संस्थान ने यह निर्णय किया है कि ठाकुर जी की जयंती कार्यक्रम के साथ किसी न किसी क्षेत्र, स्थान या घटना के इतिहास को उजागर किया जाए। इसी उपलक्ष्य पर आज राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन भी किया जा रहा है।

कार्यक्रम के पहले दिन **स्वतंत्रता संग्राम में हिमाचल प्रदेश का योगदान** विषय पर आयोजित राष्ट्रस्तरीय परिसंवाद में ५५ विद्वानों ने भाग लिया तथा परिसंवाद में ४५ शोध पत्र दो सत्रों में पढ़े गए। सभी शोध पत्र वाचकों ने मुख्यविषय तथा उपविषयों से सम्बन्धित शोध पत्र प्रस्तुत किए।

रात्रि को हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी और शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। सांस्कृतिक संध्या में कलाकारों द्वारा काव्य पाठ के साथ-साथ कुल्लुवी, मंडयाली, महासुवी व सिरमौरी नाटी के माध्यम से प्रदेश की संस्कृति से सभी अतिथियों को रूबरू करवाया।

१५ फरवरी, २०२१ को राज्यस्तरीय ठाकुर रामसिंह जयन्ती समापन समारोह के उपलक्ष्य पर परिसर में प्रातः हवन-यज्ञ का आयोजन किया गया जोकि संस्थान की आरम्भकाल से ही परम्परा रही है। मंचासीन अतिथियों द्वारा संस्थान से प्रकाशित स्मारिका (विकास यात्रा के विविध आयाम) का विमोचन किया। जिसमें संस्थान की पिछले १५ वर्षों की यात्रा का संकलन है। वैरागी जी द्वारा श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी के जीवन पर लिखित कविता 'हमारे ठाकुर जी' का सस्वर पाठ किया गया।

मुख्यातिथि श्री गोविन्द सिंह ठाकुर ने कहा कि ठाकुर जी के राज्यस्तरीय जयंती कार्यक्रम में शामिल होना हम सबके लिए गौरव का विषय है क्योंकि ठाकुर रामसिंह जी केवल मात्र व्यक्ति नहीं थे, अपितु अपने आप में एक संस्था थे। सतत् राष्ट्र चिन्तनशील और राष्ट्र के प्रति समर्पित उनका महान व्यक्तित्व हम सब के लिए आदर्श स्वरूप एवं प्रेरणापुंज का स्रोत है। ऐसे विराट व्यक्तित्व का परिचय हमें उनके द्वारा किए गए महान् कार्यों से मिलता है। उनके द्वारा इतिहास के क्षेत्र में किए गए बीजवपन रूपी कार्यों के फलस्वरूप आज शोध संस्थान निरन्तर इतिहास और संस्कृति के अनर्गल तर्कों पर गढ़े हुए मिथ्य तथ्यों को तर्क सहित खण्डित कर सत्यपरक तथ्यों का समाज के समक्ष उद्घाटन कर रहा है। संगठनशिल्पी ठाकुर रामसिंह जी का जन्म भोरंज के झण्डवीं गांव में हुआ। अपनी शिक्षा-दीक्षा के उपरान्त आजीवन राष्ट्र कार्य हेतु अपना जीवन समर्पित कर संघ के प्रचारक के रूप में संघ कार्य किया। ठाकुर जी के द्वारा दर्शाए गए मार्ग पर चलकर हमें ''परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रम्'' के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए अनवरत इस पुनीत कार्य में लगे रहना है, यही ठाकुर जी के लिए वास्तव रूप में श्रद्धांजलि होगी। हम सभी अपने पूर्व जन्म के पुण्यकर्मों के फलस्वरूप आज सब इस पवित्र स्थान पर इस कार्यक्रम में एकत्रित हुए हैं। मुख्यातिथि ने शोध संस्थान नेरी के निदेशक श्री चेतराम गर्ग द्वारा उठाए गए मनु धाम निर्माण विषय पर अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा कि 'मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि जब नेरी शोध संस्थान और इतिहास संकलन समिति इस पुण्य काम को संभालेंगे तो निश्चित रूप से यह देव कार्य यथाशीघ्र सुसम्पन्न होगा।

कार्यक्रम के अध्यक्ष श्रीमती कमलेश कुमारी ने कहा कि ठाकुर राम सिंह सदैव समाज के लिए समर्पित रहे और देश के अलग-अलग क्षेत्रों में रहकर उन्होंने संघ कार्य अर्थात ईश्वरीय कार्य किया है। उन्होंने समूचे देश को अपना परिवार समझकर उसकी सेवा की। हम क्षेत्रवासी खुद को गौरवशाली महसूस करते हैं कि हम ठाकुर जी की जन्मस्थली भोरंज से सबंध रखते हैं। इस शोध संस्थान की स्थापना

कर उन्होंने देश को एक अमूल्य धरोहर प्रदान की है जहां से हम सब जीवन पर्यन्त नई ऊर्जा, नया ज्ञान प्राप्त करते रहेंगे।

कार्यक्रम के विशिष्टातिथि पण्डित जगन्नाथ शर्मा, अध्यक्ष मनुधाम ने अपने वक्तव्य में ठाकुर रामसिंह जी की मनुधाम संकल्पना और मनुधाम के उद्देश्यों को विद्वज्जनों के समक्ष रखा और राष्ट्र पर मनुधाम से पड़ने वाले सांस्कृतिक प्रभाव पर प्रकाश डाला।

निदेशक मंडल सदस्य डॉ भागचंद चौहान ने शोध संस्थान की विकास यात्रा एवं संस्थान के वर्तमान कार्यों पर अपने विचार रखे। मुख्यवक्ता डॉ. ओम प्रकाश शर्मा 'आजादी के ७५ वर्ष' विषय पर अपना व्याख्यान देते हुए कहा कि ''ठाकुर रामसिंह जी की चिंतन भूमि क्या है? वास्तव में कई बार हम १९७ करोड़ वर्ष के कालखंड की बात करते हैं। परन्तु हमारे लिए इसे समझना आसान नहीं था। किन्तु जैसे-जैसे ठाकुर जी से हमारा संवाद स्थापित होता गया तो हमें समझ आ गया कि ठाकुर जी तो हमारे परिवेश में बसे हैं। हमारे समाज में बसे हैं। हम बड़े-बड़े डिग्री होल्डर बन गए। किन्तु यह नहीं समझ पाए कि हमारा ग्रामीण परिवेश क्या है? उन्होंने आगे कहा कि भारत की आज़ादी का विमर्श १८५७ से चला किन्तु हम उसे भी नहीं समझ पाए। जबकि ठाकुर रामसिंह ने बड़ी सहजता से १९७ करोड़ वर्ष के परिवेश को समझा दिया। ठाकुर रामसिंह मैकाले पद्दति को नहीं मानते थे उनका स्पष्ट मानना था कि यह हमारा चिंतन नहीं है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी जिस १९७ करोड़ वर्ष की अवधारणा को समझ नहीं पाए ठाकुर रामसिंह जी उसे समझ पाए। जिस प्रकृति के इतिहास को विश्व नहीं समझ सका भारत ने उसे समझा। सूर्य, मंगल, पृथ्वी, वनस्पति का इतिहास मानवोत्पति के इतिहास से भी प्राचीन है और इसी की बात ठाकुर राम सिंह करते थे।'

कार्यक्रम के अंत में शोध संस्थान नेरी के महासचिव श्री भूमिदत शर्मा ने उपस्थित सभी अतिथियों, विद्वानों एवं शोधार्थियों का धन्यवाद किया।

शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग,
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
धर्मशाला, जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

सम्पादक के नाम पत्र

आदरणीय सम्पादक महोदय

इतिहास शोध संस्थान नेरी द्वारा प्रकाशित यह पत्रिका दिन-प्रतिदिन उत्कृष्टता प्राप्त कर रही है। विषय रोचक एवं समसामयिक होने की वजह से ग्राह्य भी है। बहुत समय से मैं निरन्तर इस पत्रिका से आंशिक रूप से तथा गत् वर्षों से पूर्णतः नियमित अध्ययन करता रहा हूं। इतिहास विषय में रूचि होना मेरे अध्ययन को और अधिक गंभीर व फलीभूत करने योग्य बनाता है।

पिछले अंकों में प्रकाशित लेखों में डॉ. भीमराव आम्बेडकर के साम्प्रदायिकता के प्रति विचारों को काफी कुछ नए तत्त्व जानने को मिले। अन्य लेख भी गंभीर व जानकारियों में भरे पड़े थे। सुझाव के तौर मैं महोदय से विनती करता हूं कि पत्रिका के आवरण पर जो चित्र अंकित होता है उसके बारे में भी संक्षेप में वर्णित करें तथा अगामी अंक में विषय का भी जिक्र करें। मैं यह भी चाहता हूं कि कोई गंभीर विद्यार्थी जो इस पत्रिका में अपने लेख छपवाना चाहते हैं उन्हें किस प्रक्रिया से गुजरना होगा। आगामी अंक के इंतजार में..

लकी शर्मा
शोधार्थी, हि.प्र.के.वि

आदरणीय संपादक महोदय

मैं पिछले एक वर्ष से इस पत्रिका की नियमित पठिका हूं। गत वर्ष मुझे अपने किसी रिश्तेदार के घर पर यह पत्रिका मिली। पढ़ने पर मुझे ऐसा लगा मानों कब से किसी ऐसी पत्रिका के इंतजार में थी। मैं यह पत्र महोदय को धन्यवाद ज्ञापन करने के लिए लिख रही हूं।

नवीनतम अंक में मुझे जो विषय मिले वह बहुत ही रोचक एवं ज्ञानवर्धक हैं। हिन्दू कोड बिल की बात हो या रामजन्मभूमि का विषय या नारियों के प्रति वैदिक संस्कृति का दृष्टिकोण, विद्वानों ने अपने विषय को काफी व्यवस्थित व सुलझे हुए तरीके से रखा है। इस अंक में महिलाओं की गरिमा से जुड़े विषय पर विशेष बल देने के लिए मैं महोदय को सहर्ष धन्यवाद व बधाई ज्ञापित करती हूं। सुझाव के तौर पर महोदय से निवेदन है कि व्याकरणिक अशुद्धियां देखने को मिलती हैं जिस पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

निरुपमा शर्मा
सहायक शिक्षिका, शारीरिक शिक्षा
वैशाली, बिहार

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विषयों से सम्बंधित विवरण

फार्म -४ (नियम ८ देखिए)

१.प्रकाशन स्थल	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी
२.प्रकाशन तिथि	:	अप्रैल, जुलाई, अक्तूबर, जनवरी माह का प्रथम सप्ताह
३. मुद्रक का नाम	:	प्यार चन्द परमार
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर-१७७००१ हिमाचल प्रदेश।
४.प्रकाशक का नाम	:	प्यार चन्द परमार
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर-१७७००१ हिमाचल प्रदेश।
५.सम्पादक का नाम	:	डॉ. राकेश कुमार शर्मा
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर-१७७००१ हिमाचल प्रदेश।
६.उन व्यक्तियों के नाम व पत्ते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के सांझेदार या हिस्सेदार हों।	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर-१७७००१ हिमाचल प्रदेश।

मैं प्यार चन्द परमार प्रकाशक एवं मुद्रक इतिहास दिवाकर एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सत्य है।

हस्ता/-
प्यार चन्द परमार,
प्रकाशक
दिनांक ३१ मार्च, २०२१